रेडियम के अक्षर

(कहानी-संग्रह)

सरूप कुमारी बख़्शी

प्रथम संस्करण
१९५८

मूल्य २)

दो शब्द

मेरी प्रथम पुस्तक "कौड़ियों का नाच", जुलाई १९५६ में प्रकाशित हुई थी। आज मैं अपनी दूसरी रचना "रेडियम के अक्षर" प्रस्तुत कर रही हूं। साहित्य के क्षेत्र में यह मेरा दूसरा क़दम है। क़दम कितने सधे, यह बतलाना तो विज्ञ पाठकों का ही काम है। मैं केवल विद्वान् आलोचकों के प्रसाद की ही भूखी नहीं। जन-साधारण का मत जानने के लिए भी उतनी ही उत्सुक रहती हूं।

दोनों पुस्तकों में जो चरित्र मैंने अंकित किये हैं वह काल्पनिक हैं। यह सच है कि कहानियाँ यथार्थ की पृष्ठभूमि के बिना नहीं लिखी जा सकतीं। लौकिक जीवन का सहारा यदि न लिया जाय तो कहानियों का सृजन क्या आकाश के तारे तोड़ कर किया जायेगा? फिर भी मैं इस बात के लिये पग-पग पर सतर्क रही हूं कि अनजाने में भी किसी व्यक्ति विशेष की छाया मेरे पात्रों में न पड़े।

मैं श्री अमृतलाल नागर की सदैव कृतज्ञ रहूंगी। उन्होंने मेरी रचनाओं को ध्यान से पढ़ा और सुन्दर सुझाव दिये।

मैं श्री योगेन्द्र नाथ वर्मा को धन्यवाद देती हूं जिन्होंने मेरी पुस्तक का आवरण-चित्र बनाया।

सरूप कुमारी बख़्शी

"राज भवन"
टेलीफ़ोन एक्सचेन्ज रोड,
लखनऊ।
२६ मार्च १९५८

स्वर्गीय डा० मदन अटल

को

सादर समर्पित

विषय-सूची

मशीन की पीड़ा

उसने निचले होंठ को दांत से दबाया, एक आंख ज़ोर से मींचकर दूसरी को धीरे-धीरे खोला और दर्पण के टुकड़े में डरते-डरते अपनी झलक देखी। नहीं, वह डरेगा नहीं, उसने दूसरी आँख भी खोल दी और शीशे के अन्दर से झांकते हुए दुश्मन को घूर-घूर कर देखने लगा।

उसको आश्चर्य हुआ। वह तेज़ घूमता हुआ भयानक चक्र रुक गया था और धीरे-धीरे झुर्रीदार, पीले, बुझे हुए चेहरे का रूप ले रहा था। धुएँ के बिखरे, फैले हुए लच्छे केशों के रूप में सिकुड़ कर उसकी चँदिया पर चिपक गए थे और वह जो भट्ठी के अन्दर लाल-लाल शोले से नजर आया करते थे, वे दो चमकदार आँखों में बदल गये थे। उसने सूरत पहचान ली। यह उसी का चेहरा था, हाँ, उसी का। प्रेत की छाया उसके सिर से उतर चुकी थी। वह अब आजाद था, आजाद। उसकी नस-नस में हर्ष की करेंट कौंधने लगी।

उसने शीशा और कंघा ताकचे पर रख दिया और नजर की चोर-बत्ती चारों ओर घुमाई। सूर्य की फीकी-फीकी सी रौशनी, टकों पर बिकने वाली वेश्या के समान उसके मैले-कुचैले बिस्तर पर लोट कर, फूलदार नीले ट्रंक को टटोल कर, ताकचे पर रक्खे

शीशे में अपनी ही चमक से चुहल कर, सिर के झटके से अँधेरा बिखेर कर खिड़की के रास्ते गली में निकल भागी थी। भोला ने लालटेन जलाई। कोठरी की ग़रीबी अपनी सारी गर्द, गन्दगी, कालिख, और कूड़े-करकट को लेकर काटने को दौड़ी।

उसने इरादा कर लिया। अब की बार तरक़्क़ी मिलने पर वह हाते के बाहर वाली कोठरी किराये पर लेगा। नहीं, वह अब बीमार नहीं पड़ेगा। वह मेहनत से काम करेगा, पैसा कमायेगा, उसे अपाहिज के समान बिस्तर पर पड़े रहने से नफ़रत है। शुक्र है, आज उसकी छुट्टियां समाप्त हो गई हैं। कल से वह अपने काम पर जायेगा। अपनी मशीन चलायेगा। उसकी मशीन, हाँ उसकी। उसका दिल ख़ुशी और डर से धड़कने लगा, दर्द से छटपटाने लगा, किसी की याद उसके दिल को तड़पाने लगी जैसे कि दूर कारखाने में पड़ी वह लोहे की मशीन, मशीन नहीं वरन् एक नन्हीं-सी जान हो, धड़कती हुई आत्मा हो, उसकी प्रेमिका हो। उसकी आँखों में आँसू आ गए। वह रोने लगा।

एकाएक उसका दिल ढीले पुर्ज़े की तरह उछल पड़ा। माथे के छिद्रों से तेल सा चूने लगा। उसने अपनी सांस का स्विच बन्द कर लिया।

उसे लगा जैसे कोई इन्जन हप्-हप् हांपता, खखारता हुआ सा, उसी की कोठरी की ओर चला आ रहा था, पीछे किवाड़ों को रौंदता हुआ सा। उसने मारे डर के आँखें बन्द कर लीं। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। अचानक एक लोहे का पंजा धम् से उसके कन्धे पर पड़ा। उसने तिलमिला कर आँखें खोल दीं।

"हो......हो......हो। अभी तक पड़ा सो रहा है। उठ साले।" इंजन की छाया पहले धुएँ के गुच्छों में, फिर भारी-भरकम शरीर के ढांचे में, फिर गोल-गोल आँखें, फूले हुए गाल और नोकदार मूंछें लिए हुए चेहरे के आकार में और फिर होंठ के प्लग से बिजली की चिनगारियाँ उड़ाते हुए दांतों में बदल गई थी। यह थी माधो की हँसी, उसने पहचान लिया।

"ही...ही...ही...त...त...तू है। मैं समझे था। ही...ही...ही..." भोला खिसियाकर हँस पड़ा।

"क्या समझा था रे? तू रहा न बम भोले। ला बीड़ी दे साले, ये रही डिब्बी।" माधो ने इन्तज़ार न कर खुद ही बीड़ी की डिबिया उठा ली और मैले-कुचैले बिस्तर पर धम् से बैठकर झट से बीड़ी जलाई और कश लेकर धुआँ उड़ाया।

"ले, तू भी कश ले न, कैच कर," माधो ने डिबिया उछाल कर कहा।

भोला ने डिबिया कैच की और बीड़ी सुलगा कर एक कश लिया। उसकी आँखों के लट्टू की चमक माधो के चिकने-चुपड़े बालों को, धारीदार नीले कोट को, लट्ठे के पायजामे को, उसके ठाट-बाट को अपने घेरे में लेकर, उसकी जेब से झांकती हुई ठर्रे की बोतल पर जाकर रुक गई थी।

"यह? ठर्रा। ही...ही...मैंने सोचा लेता चलूं तेरे लिए। लेकिन अभी नहीं। नौ नम्बर कोठे पर चलकर पियेंगे। अभी तो सात नहीं बजे। पर घर में दिल ऊब गया, सोचा, दो मिनट तेरे साथ गप्प-सप्प सही। अच्छा, हाँ, अब कैसा है तू। तेरे दिमाग का पुर्जा कुछ ढीला हो गया था न। ही...ही...ही...

भई खूब, कसम तेरी जान की···ही···ही···ही" माधो ने कनपटी के पास अपनी चुलबुली उँगलियों से ढीले पुर्जों को नचाते हुए कहा और हँस पड़ा।

भोला को यह मज़ाक बुरा लगा। माथे के स्प्रिंग सिकोड़ कर बोला, "मेरा दिमाग भला ऐसा क्यों होने लगा था। मैं··· मैं···बिलकुल ठीक हूँ। मेरे सिर पर तो बस भूत चढ़ गया था। ले तू हँस रहा है। साले तेरी गर्दन को तार की माफ़िक मरोड़ दूँगा। कसम तेरी जान की, मैंने इन आँखों से भूत देखा था। मेरे तो रोंगटे खड़े हो गए। जादू टोना किया तब जाके जान बची। डाक्टर ने कह दिया, दिमाग फिर गया। ये डाक्टर साले, हरामी, सब चोर हैं, बदमाश हैं, मैं तो लुट गया। कफ़न को भी जो कौड़ी बची हो। पर इतना सच है कि वर्कशाप में एक भूत है। मैंने उसे देखा है, आमने-सामने, साफ़-साफ़, जैसे मैं तुझे देख रहा हूँ, तुझे और तेरे ठर्रे की बोतल को। तो क्या···क्या मैं पागल हूँ।" भोला चिढ़ कर बोला। हँसते-हँसते माधो की आँखों में आँसू आ गये।

माधो को भूत-प्रेत पर विश्वास नहीं। वह पढ़ा-लिखा मज़दूर है इसलिए कारखाने की बस्ती में उसका बड़ा आदर है। वह मज़दूरों के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना बेकार मनुष्य के लिए सवेरे का ताज़ा अखबार, नेता के लिए भोंपू या सम्पादक के लिये उड़ती ख़बर। उसे दुनिया भर की बातें मालूम हैं जिनमें वह जोश का बारूद भरकर बम गोलों की तरह चारों ओर उड़ाया करता है। "अजी क्या पता तुम्हें, अमरीका ऐसा बम तैयार कर रहा है कि यह धरती का गोला झुलस कर राख हो जायगा मिन्टों में" वह उँगलियों से चट्ट-चट्ट चुटकियाँ बजाकर कहता, "हमारे घर-द्वार, बाल-बच्चों की क्या बात,

यह बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ, मशीनें, इंजन यहाँ तक कि शहर के शहर स्वाहा हो जायेंगे। दुनिया के पर्दे पर इन्सान का नामो-निशान जो रह जाये तो मेरा नाम माधो नहीं।" वह मूंछों पर ताव देकर दावे से कहता।

या कभी वह समाचार-पत्र का टुकड़ा हाथ में नचाता हुआ लाता और कहता 'अरे यार फलाने मुल्क में ऐसा हवाई जहाज तैयार हो रहा है जो हमें चन्द्रमा तक ले जायेगा। बात यह है कि दुनिया की आबादी इतनी बढ़ गई है कि अब यहाँ समाती नहीं। अरे, सुना है लोगों ने सीटें भी बुक करली हैं। काश, मेरे पास रुपया होता, इन मशीनों की घर्र···वर्र···से जी ऊब गया। आह, चाँद की घाटियों में कैसी सुहानी चांदनी होगी, ठंडी-ठंडी और खुली हवा," वह आह भरकर कहता और उदासी की गहराइयों में डूब जाता।

"भूत-प्रेत की बात छोड़," माधो ने कहा, "और न तुझे रोग ही है। तुझे वहम हो गया है। तुझे अपनी औरत का ग़म है बस. है कि नहीं? कसम खा मेरी······।"

"तेरी जान की कसम, जो मुझे रत्ती भर भी चाह हो उसकी। साली, हरामजादी चली गई, अच्छा हुआ। ऐसी-ऐसी सैकड़ों पड़ी हैं। एक गई दूसरी रख लूंगा। पांच सौ रुपये में खरीदा था, ऐसे तिरछे नैन थे उसके, कटार मारती थी उसकी नजर। हाय······" उसकी छाती से हूक सी निकल पड़ी। आँखों में आंसू आ गये। वह रोने लगा।

अपनी कमीज के कालर से आंसू पोंछ कर बोला, "मुझसे कहती थी तू बड़ा रूखा है, तू न हँसे न बोले, दिन भर काम

करे, रात को पड़ के घर्र-घर्र मशीन सा खुर्राटे ले। तेरे पास तेल की बू आवे। तेरे कपड़ों से धुआं उड़े, हाय, मेरा दम घुटे, हट यहाँ से, तू मर्द नहीं, तू मशीन है···मशीन···मशीन। माधो, क्या सचमुच मैं मशीन हूँ। क्या इन्सान मशीन·········।"

"कल देखा था मैंने साली को बांके तबलची के साथ, सनीमा में बैठी थी, कन्धे से कन्धा मिलाये बीड़ी फूंक रही थी। बांके है तो बड़ा छैल-छबीला पर आवारा है, लम्बरी बदमास। वह रक्खेगा थोड़ा न इसको, चार दिन मजे लूट के, जेवर चट्ट कर किसी फिलम वाले को बेच चम्पत होगा। तू न फिकर कर। ऐसी बदमास औरतों की यही दुर्दसा होवे है। जरूरत क्या औरत रखने की, आजकल की औरतें साली सब बेईमान और बदमाश होवे हैं। मेरी औरत मर गई टी० बी० से, उस टेम तो मैं फूट-फूट कर रोया था पर अब सोचता हूँ भोला, अच्छा हुआ। शहर में कुछ दिन रह के वह भी बिगड़ जाती। मेरा बेटा टी० बी० से मर गया। यह गम क्या थोड़ा था। सच, ऐसा मन हुआ भोला, कि अपने कलेजे में गोली मार लूं, आर-पार, पर जो कुछ हुआ, अच्छा हुआ। अगर जी जाता तो कौन सुख था। हमारी तरह वह भी मशीनों के संग रह कर मशीन बन जाता, फिर उसका बेटा और उसका बेटा···और हमारे परिवार की गुलामी की जंजीर लम्बी होती चली जाती, कभी न टूटती।"

"फिर भी घर-बार होने से इन्सान के मन को कितना सहारा रहता है, कितनी तसल्ली, प्यार-मुहब्बत······" भोला ने दबी जबान से कहा।

"घर-बार, ऊँह," माधो ने अपने चेहरे के तारों को झुंझलाहट के पुर्जे पर कसते हुए कहा, "हमारा घर-बार है कहाँ। कभी

सिंगल ड्यूटी, कभी डब्बल. कारखाना हमारा घर, मशीनें हमारी बीबी-बच्चे। वह छोटे-छोटे घर, झोपड़ी, कोठरी या इकतल्ला मकान, धुंधली बत्तियों से टिमटिमाती हुई टेढ़ी-मेढ़ी गलियां, आस्सान के तले सोई हुई बस्तियाँ, प्यार और मुहब्बत के सपने दूर से आती हुई बाँसुरी की दर्द भरी आवाज, सब···सब खत्म हो जायगा। जहाँ बस्तियाँ हैं, वहाँ बड़े-बड़े कारखाने बनेंगे, जहाँ आसमान है वहाँ ईंट और सीमेंट की मंजिलें होंगी। बाँसुरी की आवाज़ की जगह चारों ओर सिक्कों का राग होगा। शहर में एक चप्पा जमीन न बचेगी जिसमें हमारे बच्चे आँख-मिचौनी खेल सकें। रात को सोते समय इन्सान एक सितारा देखने के लिए तरस जायेगा। दोस्त, सहर के जर्रे-जर्रे में जहर है, पैसे का खनक में, दुकान की चमक में, औरत की लाज में, नाचने वाली के साज में, ज़हर है ज़हर। यहां से भागो, भागो, दूर···दूर···जहाँ सहर की बस्ती नजर न आये, जहाँ सिक्कों की खनक सुनाई न दे, जहाँ झूठ-फरेब दगा और लालच की घुटन न हो। जहाँ पैर तले हरी-हरी घास हो, या धूल हो, बस धूल, आसमान पर सितारों की रोशनी हो और मन में एक दर्द भरा गीत हो जो मन की बीन में ही तड़पता रहे, बाहर कभी कभी न निकले। लेकिन, हाय कहाँ जायें···कहाँ जायें। अफसोस, हम इन्सान नहीं, हम आजाद नहीं, हम मशीन हैं मशीन··· मशीन···," माधो ने कहा और उसकी छाती की धौंकनी से हूक निकल पड़ी। भोला रोने लगा।

"चल उठ," माधो ने भोला को घसीटा। ठर्रे की बोतल ने उसे नौ नम्बर वाले कोठे की याद दिलाई थी।

कूड़े-करकट, चिन्दी-चिथड़ों से भरे हुए हाते को, जिसके चारों ओर दुर्गन्ध भरी नाली घूम गयी थी, टीन के टूटे डिब्बे,

खपच्चियों के टुकड़े, खाट-खटोलों को, टाट के परदों से ढकी हुई कोठरियों को पार कर वे गली में निकल आये और अगले मोड़ पर मुड़े ही थे कि तबले की भोंडी, बेसुरी ठनक उनके कान में पड़ी।

माधो के अन्दर घुसते ही तबले की ठनक में तेजी आई और गाने की धुन में मस्ती और हड्डियों के ढांचों से हँसी-ठट्ठों के फव्वारे फूटने लगे।

रात के बारह बज चुके थे पर गेंदा बाई की महफिल जमी हुई थी। उसके प्रेमी शराब पी-पीकर लोट रहे थे। अख्तर साइकिल-चोर चौखट पर पड़ा हुआ दोनों टांगों को साइकिल के पहिये समझ कर खूब जोर-जोर से चला रहा था और उसे आश्चर्य था कि इतनी मेहनत करने पर भी उसकी साइकिल चौखट पर ही अटकी, टस से मस जो हो जाये। बेचारा पसीने-पसीने हो गया। अल्लाह, तेरी पनाह है। मेरे गुनाहों को माफ कर, या इलाही। उसकी आँखों में आंसू आ गये। वह रो पड़ा किन्तु अख्तर साइकिल-चोर हार मानने वाला न था। वह खूब तेजी से अपने पैरों के पैडल घुमाने लगा।

माधो और भोला अपनी-अपनी मशीनों के साथ उलझे हुए हप-हप हांप रहे थे। भोला कलाबाजियों के चक्र में गोल-गोल घूम रहा था। माधो नशे में धुत्त हाथ को हैन्डल सा घुमा रहा था।

"वाह रे पट्ठे शाब्बा···श······।" माधो चिल्लाया।

भोला को जोश चढ़ गया। वह इन्सान न रहा। शराब और शाबाशी के नशे ने उसको मशीन बना दिया था और वह पान की छींटों से भरी दरी पर खूब तेज-तेज कलाबाजियां खाने लगा।

धीरे-धीरे वह नाच-गाने और नशे के चक्र में घूमती हुई कोठरी वर्कशाप बन गई। इन्सान मशीनों के रूप में बदल गये। मस्ती, और रंगीनी की परियाँ रौशनदान से निकल भागीं। खूब ज़ोर-शोर से काम होने लगा। साइकिल-चोर के पहियों में और तेज़ी आ गई।

गेंदा अभी होश में थी। उसकी काजल की लकीर मारे आश्चर्य के तिरछी से गोल हो गई, उसने अपनी उँगली को ठोढ़ी पर रक्खा, गरदन घुमाई, दायीं ओर, बायीं ओर और फिर उसकी हड्डियों के पुर्जे हँसी के स्प्रिंग पर नाचने लगे।

गेंदा एकाएक चीख पड़ी। कोई उसके कान के पुर्जे को नोच रहा है। उसके दिमाग़ की मशीन फटने लगी। मारे दर्द के वह बेहोश हो गई। यह तो कहो माधो ने आकर भोला को पकड़ कर घसीट लिया और उसके बांह के हैन्डल को इस ज़ोर से मोड़ा कि भोला की नसों में करेन्ट कौंधने लगी। भोला को रोना आ गया। ईश्वर जानता है उसने गेंदा का कान जानबूझ कर नहीं मरोड़ा था। उसने तो, मशीन का पुर्ज़ा ढीला है, यह समझ कर उसे प्लास से कसने की कोशिश की थी। वह तो मज़दूर है और एक ईमानदार मज़दूर का यह फर्ज है कि वह मशीन के पुर्ज़ों को ठीक-ठीक रक्खे। ईश्वर जानता है··· भोला को अपनी भूल पर, अपनी बेबसी पर रोना आ गया। माधो ने गेंदा के कान पर नज़र डाली। गेंदा होश में आ गयी थी। पर सच, वास्तव में, उसका कान पुर्जे सा गोल-गोल घूम रहा था। माधो ने भोला का हैन्डिल छोड़ दिया और ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा। साइकिल-चोर ने अपने पहियों की चाल दुगुनी कर दी। वह पसीने-पसीने हो गया। या अल्लाह!

··· ··· ···

उसने कांपती हुई उँगलियों के प्लास से पाटी को कसकर पकड़ लिया। नहीं···नहीं···उसे इत्मीनान हुआ। वह तेजी से घूमता हुआ पंखा उसके दिमाग़ का चक्र था। वह हवाई जहाज़ नहीं, केवल चारपाई थी जिसके पेंदे की रस्सी टूट गई थी और हवा की अनन्त खाइयों में डूबती हुई सी चीज हवाई-छतरी न थी उसके दिल की उदासी थी।

उसने निडर होकर अ नी दूसरी आँख भी खोल दी। नहीं, वह बम का शोला न था। सूर्य की किरणें उसके पोर-पोर में चुभ रहीं थीं। उस चुभन के साथ-साथ उसे कल रात की घटनायें याद आ गईं। वह ठर्रा······। उसने कई दिनों बाद चुस्की ली थी तभी उसके सिर में इतना दर्द है···खैर······ ···उसे गेंदा की याद आई। लेकिन·········उसके ढीले-ढीले कान···ईश्वर जानता है उसने कोई अपराध नहीं किया था। उसन तो समझा था···पर फिर भी, कितना मूर्ख था वह, उसने केशों पर कंघी देते हुए सोचा। उसको अपनी बेवकूफी पर लज्जा आई और हँसी भी। शीशे के गोल आकार में उसके दांत बिजली के लट्टू की क़तार बन कर कौंधने लगे। लेकिन··· हो सकता है उसका कान ही पुर्जे के रूप में बदल गया हो। हां, बहुत सम्भव है। इसमें शक क्या है। वह टैम आ गया है जब मशीन इन्सान होगी और इन्सान, मशीन। यह गेंदा, गुलाब, गुलदाउदी सब अपनी-अपनी खुशबू और नजाकत खोकर पुर्जे बन जायेंगे। तो···तो क्या गेंदा, गेंदा न रहेगी। उसके दिल पर हथौड़े की चोट लगी। उसकी हँसी की बिजली भक् से फ़्यूज़ होकर बुझ गई।

कारखाने का शोर-गुल उसे दूर से सुनाई दिया। तो, काम शुरू हो गया है। उसे कुछ देर हो गई। मशीनों की गड़गड़ाहट

सुन कर उसका दिल धड़कने लगा। टांगें कांपने लगीं। कानों में सीटियाँ बजने लगीं। उसने तेज़ी से क़दम बढ़ाये।

यह उसकी मशीन है। हाँ उसकी। वह है और उसकी मशीन। उसके शरीर के पम्प में प्यार का पेट्रोल उमड़ आया। आँखों में आंसू भर आये। वह एक बच्चे की तरह रो पड़ा, उसने सबकी नज़रें छुपा कर कमीज़ के मैले कफ़ से आँखें पोंछ लीं, और अपने काम में जुट गया। उसने मशीन को हाथ लगाया ही था कि उसकी हड्डियाँ पुर्ज़े बनकर उमंग की करंट पर थिरकने लगीं।

कारखाने में शोर-गुल और गड़गड़ाहट बढ़ती चली जा रही थी। वह थक गया। उसका मन हुआ कि पल भर सुस्ता लूं किन्तु उसके शरीर के पुर्ज़े इस तेजी से घूम रहे थे कि उनकी गति को रोकना उसके बस की बात न थी। उसका सिर चकराने लगा। उसे लगा, उसके दिमाग़ में एक नन्हा सा पंखा खूब तेज-तेज घूम रहा है जैसे किसी ने बिजली का स्विच दबा दिया हो। कहीं ऐसा तो नहीं कि किसी ने उसके दिमाग़ की हड्डी निकाल के उसमें एक बनावटी पंखा जड़ दिया हो, उसे डर लगा। अक्सर एक अंग बेकार होने पर डाक्टर लोग नकली अंग जड़ देते हैं। पर क्या ऐसा हो सकता है। क्या अचरज, सैंस ने तो बड़ी-बड़ी तरक्की की है। सुना है बड़े साहब की नाक एक बार तेजाब से उड़ गई थी। यह नाक तो नकली है। नाक...नकली...ही...ही...ही...ऊँय...। तो क्या जब मैं बेहोश पड़ा था और मेरा दिमाग... क्या मेरा दिमाग सचमुच फिर गया था ? क्या......क्या मैं पागल हूँ ? पागल......? उसका हाथ कांपने लगा। भय के प्लास ने उसके हृदय के, पेंच को जकड़ लिया।

उसने निराशा की धुंधली दूरबीन से झांक कर माधो की ओर देखा, सहारे के लिए, उसका दिल धक से हुआ।

उसने देखा माधो का रूप धीरे-धीरे बदल रहा था। उसके बाल धुआँ बनकर उड़ने लगे थे। उसकी आँखें गोल-गोल पुर्जे बनकर घूम रहीं थीं। उसकी बांह हैन्डिल बन गई थी। उसने चारों ओर नजर का पेंच घुमाया। कल्लू, छेदा, बन्सी, सरजू, उसके सभी मजदूर-मित्र मशीनों के रूप में बदल गये थे, लोहे के चक्र बनकर घूम रहे थे। इन्सान मशीन बन गया था। तो क्या यह······, भोला की कनपटियों के पुर्जे घूमने लगे, घर्र······ घर्र······घर्र, उसने आँखों पर ढक्कन डाल दिया। वह कुछ देखना नहीं चाहता, सुनना नहीं चाहता। वह जोर-जोर से मशीन चलाने लगा।

उसकी नसें बिजली की नेगिटिव और पौजिटिव तारों की भाँति परस्पर रगड़-रगड़कर कौंधने लगी। उसका शरीर सिहर उठा। वह चीखना चाहता था, किन्तु गला जम कर लोहा बन गया था। उसके आँसू तेल बनकर चिपक गये थे।

उसकी आँखों की रौशनी धीरे-धीरे बुझने लगी। उसके कान, कान न रह कर सीटियाँ बन गये। उसके दिल की धड़कन मशीन की गड़गड़ाहट में बदल गयी। उसके दिमाग की निराशा का अन्त न था। वह अब एक इन्सान न था, वह सचमुच एक मशीन हो गया था मशीन···मशीन···मशीन··· घर्र···घर्र···घर्र············

उसके अंग पालिश की हुई मशीन की तरह चमकदार और गठे हुए, दोहरे होकर गोल गोल घूमने लगे, चक्र का अंश बन

गये, उसके साथ चिपक कर एकाकार हो गये मशीन की सत्ता में विलीन हो गये जैसे समुद्र में बूंद, सूर्य में प्रकाश की रेखा, ब्रह्म में आत्मा।

कारख़ाने में एक भयानक चीख़ सुनाई दी। फिर मृत्यु का सन्नाटा। लोगों के दुख, दर्द और आश्चर्य की सीमा न थी। भोला मशीन का ही अंग बनकर कुचल गया था। उसका शरीर, शरीर न था, लोहे का लोथड़ा था।

एक पल मृत्यु का सन्नाटा छा गया, फिर शोर-ग़ुल, चीख़-पुकार, दौड़-धूप···फिर सन्नाटा···

एकाएक किसी ने हुँकार भरी···घर्र···घर्र···घर्र···घर्र और मज़दूरों की क़तार मशीनों के रूप में बदल कर थिरकने लगी।

घर की बेटी

"अजी ! सुनते हो। मैंने कहा जी सुनते हो," राजरानी ने अपने पति के पैर हिला कर कहा।

"सुनते हो" के शब्द सुनते ही दीनानाथ रिटायर्ड हैडमास्टर के खुर्राटों में और भी तेजी आ गई। राजरानी हार मानने वाली न थी। चादर घसीट कर बोली—"अजी ! मैंने कहा ! कुछ घर की फ़िक्र भी है या नहीं ! कला की शादी के बारे में क्या सोचा ?"

दीनानाथ ने खुर्र···र···र···से खुर्राटा लिया।

"हाय हाय ! नींद को आफ़त आए। जब देखो, पड़े सो रहे हैं, सुबह भी खुर्र···शाम भी खुर्र···खुर्र। इन्सान है या खर्राटे की मशीन। अय ! मैंने कहा जी नरेन्द्र की जन्म-पत्री आ गई है। ऐसा लड़का फिर हाथ नहीं आयेगा। सरकारी नौकर है। घर का मकान है। हम किस योग्य हैं पर यह कहो, लड़के को हमारी कन्या पसन्द है।"

"पापा ! चाय···चाय तय्यार है।" कला ने अन्दर से पुकारा। चाय के नाम ने जादू का काम किया। दीनानाथ की दोनों आँखें खुल गईं। अंगड़ाई लेकर उठे, नलके पर मुँह हाथ धोया और अन्दर चाय की मेज़ पर जाकर बैठ गये।

राजरानी का भाषण बन्द न हुआ। उनकी उँगलियाँ फटे कपड़ों पर रफ़ू करने में उलझी हुई थीं और ज़बान कैंची चला रही थी।

"चाय के नाम पर देखो कैसे उठ गये चट से च...च...च... च..., सो जाओ जी, सो जाओ। चँदिया पर चक-चक तेल झंस दूं, कहो तो। मैंने कहा जी, नरेन्द्र की मां को क्या लिखूं। देखो तो, कैसे दुम दबाकर भाग रहे हैं। भला! ये क्या खा कर मुझसे बोलेंगे, उँह।"

और सच बात तो यही थी। स्कूल में दीनानाथ हैडमास्टर की जो शान थी वह वही जानते हैं जिन्होंने देखा है। अध्यापकों के होश उड़े रहते थे। लड़के उनके नाम से कांप उठते थे। किसी की मजाल क्या कि उनके सामने चूं भी करे। उनकी सूरत देखते ही विद्यार्थी रटा हुआ पाठ भूल जाते और अध्यापक का भाषण उनके गले में ही अटक जाता। खैर, यह तो पुरानी बातें हैं। वह ज़माना बीत गया। तीन चार वर्ष हुए वह बहुत सख्त बीमार हो गये थे। इसीलिए उन्हें नौकरी से भी हटा दिया गया था। इसका प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ा। सोचने समझने की शक्ति क्षीण होती जा रही है। बात-बात पर रो पड़ते हैं। एक बार घर छोड़कर चले गये थे। दो दिन ग़ायब रहे।

राजरानी किस हैडमास्टर से कम हैं। "उँह! वह कोई और होगी पति की जूतियाँ सहने वाली। मैं क्या किसी से दबने वाली हूँ?" वह प्रायः कहा करती थीं, "अजी, मैंने कहा बोलते क्यों नहीं अयँ, क्या चुप्पी का व्रत लिया है। देखा तुमने, शम्मो बहिनी, मेरे सामने क्या खा के मुँह खोलेंगे ये। असल बात यह है रानो, कि औरत को ढंग आना चाहिए कैसे मालिक

को बस में रक्खे। मैं तो जिधर चाहूँ नाक पकड़ के इन्हें घुमा सकती हूँ। यह कानून-कानून सब बेकार की बातें हैं। सुना है, सरकार ने औरतों को तलाक का अधिकार दे दिया है। लो जी, अब इसी की कसर थी। अब इस बुढ़ापे में मैं दूसरा ब्याह रचाऊँगी। अजी! सुनते हो मैं अब तलाक लेने वाली हूँ। तुम भी दूसरी दुल्हन ले आओ और मैं भी अपना रास्ता पकड़ूं। लड़कियों को कर दो अनाथालय में भरती। मैं कहती हूँ शम्मो रानी! क्या इन बातों से भी दुनिया चली है। सरकार ने भी क्या अच्छा मज़ाक किया है। ये चाहते तो तीसरी शादी कर सकते थे। पहली मर-खप गई, दूसरी आई मैं। तीसरी क्यों नहीं ले आये। किसी ने रोका था। रानी, यह तो हमारे कुल की रीत है कि घर की मालिकन औरत। घर के बाहर तुम्हारा राज, घर के अन्दर हमारी हुकूमत। समझी बहनी।" शम्मो रानी उस दिन घर से खूब पिट कर आईं थीं, तभी उनको यह शिक्षा दी जा रही थी। तो ऐसी जबरदस्त थी रिटायर्ड हैडमास्टर पंडित दीनानाथ की घरवाली राजरानी।

घर में पाँच लड़कियाँ हैं. कला, चपला, कमला, विमला, निर्मला। कला एम० एस० सी० में प्रथम आई है। चपला बी० ए० में फ़ेल हो चुकी है। कमला एफ० एस० सी० की छात्रा है। विमला नवीं में है और निर्मला सातवीं में। कला वैज्ञानिक बनना चाहती है। कमला डाक्टरनी बनने का स्वप्न देख रही है। चपला को पढ़ने से चिढ़ है, पुस्तक खोली नहीं कि नींद आई। शामत की मार एक दिन कह उठी, "मैं बी० ए० पास करके ब्याह करूंगी। मामा की तरह पापा पर रोब रखूंगी। घर में हुकूमत करूंगी।" कला ने कहीं सुन लिया, ऐसी जोर की चपत लगाई बोली, "चल उठ, जाके पढ़। न पढ़ी न लिखी,

करेगी हुकूमत। खबरदार जो फिर कभी शादी का नाम लिया।"

अब रही विमला और निर्मला। विमला को पढ़ने-पढ़ाने का शौक़ है, निर्मला को नाचने-गाने का। एक दिन दोनों में बहस हो गई। बात इतनी बढ़ी की हाथा-पाई होने लगी। विम्मो ने निम्मी की चोटी पकड़ ली, निम्मी ने उसके बाल नोच लिये। विम्मो ने निम्मी की ओढ़नी चीर डाली, निम्मी ने उसका मुँह छील दिया। उसने इसकी कापी फाड़ के फेंक दी, इसने उसकी गुड़िया पटक दी। एक ने दूसरे की कलाई मरोड़ दी, दूसरी ने उसकी गरदन पकड़ ली। जब कला ने दोनों के कान उमेठे, तब जाकर कहीं वह शांत हुईं।

"अहा···हा···हा। क्या मजेदार चाय है। मेरी कला के हाथ की चाय है न, अच्छी क्यों न हो। अरे···रे यह क्या··· यह क्या···यह आंसू क्यों ?···पगली कहीं की···मैं तो अभी जिन्दा हूँ। मैं क्या मर गया हूँ जो तू रो रही है। मेरी कल्लो, मेरी गुड़िया, हीरों की पुड़िया," मास्टर साहब ने अपनी लाड़ली बेटी को कलेजे से लगा लिया। वह रो पड़ी।

"क्यों, रो क्यों रही है री, बोल न," उन्होंने बेटी की ठोड़ी पकड़ कर उसका चांद सा मुखड़ा चूमते हुए पूछा, "अच्छा, अब समझा, शादी की बात पर रो रही है। भला, रोने की बात। शादी सब लड़कियों की होती है, तेरी मां की नहीं हुई; दादी की नहीं हुई क्या ? न होती तो तेरे जैसी चांद की टुकड़ी कहाँ से आती, बोल।"

"नहीं पापा ! मेरी बात और है," कला ने अपने आंसू पोंछ कर कहा, "कल प्रोफ़ेसर साहब ने मुझे फिर कहा है कि नौकरी मुझे ही मिलेगी।"

"अरी, क्या करेगी नौकरी करके। शादी करने पर तू दुल्हन बनेगी, अच्छी-अच्छी रेशमी साड़ियाँ मिलेंगी, जेवर पहनेगी। घर की रानी बनेगी तू। घरवाले पर हुकूमत करेगी। खूब रोब रखना नरेन्द्र पर, समझी। कितना सुशील लड़का है। देख, तेरी अम्मा मुझे कैसा डांटती है।"

"नहीं, पापा हम शादी नहीं करेंगे," कला ने कहा।

"क्या कहा, शादी नहीं करेगी," राजरानी ने पीछे से गरज कर कहा।

घर की रानी का स्वर सुनते ही दोनों बाप-बेटी का दम फुट हो गया। किसी के गले से चूं न निकली।

"क्यों जी ! तुम यहाँ बैठे-बैठे यही उपदेश दे रहे थे बेटी को। मैं भी कहूँ आखिर इतनी देर से बाप बेटी में खुस-पुस क्या चल रही है। अब चुप क्यों हो गई। फिर से सुनूं, क्या कह रही थी।"

"मामा मैं ब्याह नहीं करूँगी," घर की बेटी ने साहस बटोर कर कहा।

"ब्याह नहीं करेगी ?" घर की मल्किन की आंख फटी-फटी सी रह गई।

"हाँ...हाँ...ठीक तो कह रही है क...क...कल्लो मेरी," बेटी को देखकर घर के मालिक के मन में साहस उत्पन्न हुआ।

"यह कौन होती है कहने वाली, या तुम कौन होते हो बीच में बोलने वाले। इस घर की मल्किन मैं हूँ। जो चाहूँगी वही होगा, इतना समझ लो तुम दोनों। शादी हो के रहेगी, हो के रहेगी, हाँ।"

"शादी नहीं होगी, नहीं होगी," बेटी ने अपने घुँघराले केशों को झटका देकर कहा।

"यह सब तुम्हारी करतूत है। जवान-जवान लड़कियों को बिगाड़ रक्खा है, माँ को पट-पट जवाब दे रही है। चुप रह कलमुँही। मेरा तो मुँह काला करेगी यह किसी दिन। तुम न बोलो कुछ बीच में। मैं दिन भर मजदूरी करूँ, सूखी रोटी खाके पानी पी लूं, चिथड़ों से तन ढकूँ। इन छोकरियों को फ़ैशन से फ़ुरसत नहीं। इनकी पढ़ाई के पीछे घर की पाई-पाई लुट गई। हाय! न जाने भाग्य में क्या लिखा है," राजरानी रो पड़ी।

बेटी के मन में दया उमड़ आई। नम्र स्वर में बोली, "मामा! मुझे नौकर हो जाने दो फिर......।"

"तेरी नौकरी के पीछे तो मेरा ज़ेवर लुट गया। हाय, सात तोले का चन्दन-हार था मेरा।"

"मामा! आपका चन्दन-हार नहीं, पूरा ज़ेवर मैं बना के दूँगी। चाहे मुझे मज़दूरी ही क्यों न करनी पड़े। चाहे मुझे...।"

मास्टर साहब की छाती अभिमान से फूल गई। किन्तु माँ पर उल्टा प्रभाव पड़ा। क्रोध से कांप उठी, "बेटी की कमाई से ज़ेवर बनाऊँगी, अपना सिंगार करूँगी। माँ को जवाब देती है, तड़-तड़...ले...ले...और ले," उन्होंने तड़ातड़ कल्लो को थप्पड़ लगाते हुए कहा। मास्टर साहब बीच में आये तो दो उन पर पड़े। उनका दिल दर्द से भर आया। आँखों में आँसू उमड़ आये, बोले......

"तु...तु...तुमने मेरी कल्लो को मारा मेरी...क...क... कल्लो, मेरी कल्लो।"

"तुम कौन होते हो जो.........।"

"मैं उसका बाप हूँ, शादी नहीं होगी, हाँ।

"शादी हो के रहेगी। परसों टीका है, बस।"

'मैं घर छोड़ दूँगा। तुमने कल्लो को मारा, क...क... कल्लो........," वह रो पड़े।

"छोड़ दो घर। अभी चले जाओ। मुझे रत्ती भर परवाह नहीं। जाओ न। देख क्या रहे हो। लो अपनी छड़ी, वह है रास्ता जाओ, जा...ओ...।"

मास्टर बाबू का दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया। अभी तक इतना अपमान कभी न हुआ था। उनकी पत्नी ने उन्हें कभी घर से बाहर न किया था। अच्छा ! यही सही। उन्होंने छड़ी ले ली और बाहर गली में निकल पड़े। नहीं, नहीं, अब कभी कभी घर में क़दम न रक्खूंगा।"

पं० दीनानाथ किसी समय एक व्यक्तिगत मिडिल पाठशाला में हैडमास्टर थे। मुट्ठी भर वेतन था। जो कुछ जमा किया था वह लड़कियों की शिक्षा में उठ गया। आज कल हाथ तंग है। ज्यों-ज्यों पूँजी कम हो रही है, घर में उनका सम्मान भी कम होता जा रहा है। उन्हें अब एक-एक घटना याद आने लगी। कमीज के बटन टूट गये हैं, किसको परवाह है। धोती फटी है, किसी को क्या। कल से किसी ने दवाई भी नहीं दी। आज सवेरे उसने मेरे सामने थाली पटक दी, नहीं...नहीं...अब नहीं।

राह में एक उजड़ा हुआ चमन था। एक बेंच पड़ी थी। मास्टर साहब थक गये थे; भूख से अलग परेशान थे। वहीं बैठ

गये। चारों ओर सन्नाटा था। आकाश में सितारे चमक रहे थे। उनकी आँखों में आँसू आ गये। आकाश की ओर हाथ उठा कर पूछने लगे, "हे भगवान्! कौन सा कुकर्म मैंने किया है जिसका फल मुझे यह मिल रहा है। हाय! मेरी ही पत्नी ने मुझे घर से निकाल दिया। हे प्रभू।"

वह बड़ी ईमानदारी से जीवन की सब घटनाओं की छान-बीन करने लगे। स्कूल में बच्चों पर जो-जो अत्याचार उन्होंने किये थे, वे सब याद आये। मुरली को एक दिन उन्होंने छड़ी से पीटा था। चन्द्र को दिन भर धूप में खड़ा रक्खा था। वेनी को केवल आधे नम्बर से फेल किया था। हाय, उस समय मैं पत्थर हो गया था। मैं मनुष्य नहीं पशु हूँ···पशु, किन्तु मैंने कभी किसी को घर से नहीं निकाला। नहीं···ठहरो···

एक बहुत पुरानी घटना उनकी स्मृति में चमक उठी। एक बार मास्टर माधोलाल को उन्होंने जरा सी बात पर निकाल दिया था। माना उसने अपराध किया था। विद्यार्थियों को हड़ताल के लिए उत्तेजित किया था। पर फिर भी इतना बड़ा दोष नहीं था कि बेचारे की रोजी छीन ली जाती। नया-नया युवक था, जोश से भरा हुआ था, कहने में आ गया। न जाने वह कहाँ है। नौकरी मिली या नहीं। हाय, मैंने उसके बच्चों के मुँह से रोटी का टुकड़ा छीन लिया। हाय माधो मा···धो···ओ···ओ···म···मा···धो···आ······" वह वहीं बेंच पर औंधे मुँह लेट कर रोने लगे। और रोते-रोते तारों की छांह में न जाने कब सो गये।

उस दिन की घटना के पश्चात गृह में उदासी छा गई। सांझ बीत चली, रात आई। कला ने चौका-बासन किया, बाप के लिये भोजन उठाकर चूल्हे पर रख दिया और उनके लौटने की

प्रतीक्षा करने लगी। उसके कान द्वार की आहट पर ही लगे हुए थे। नौ से दस और फिर ग्यारह बजे किन्तु, पापा के लौटने का कोई निशान नहीं। मन व्याकुल हुआ तो छत पर चली गई। आकाश में चांद-सितारे चमक रहे थे, सितारों को देखकर उसकी कल्पना राकेट के समान अन्तरिक्ष में उड़ जाने के लिए छटपटाने लगी। दूर-दूर उस ज्योति-लोक में न जाने कौन लोग रहते हैं। क्या कभी इन्सान चन्द्रमा तक पहुँच सकेगा। यहीं कहीं होगा, वह छोटा चांद। कैसी होगी वह नारी जिसने इस ग्रह की रचना की है। क्या वह विवाहिता है या कुमारी। क्या उसके ऊपर भी गृह का इतना महान उत्तरदायित्व है। चाहे जो भी हो, मैं वैज्ञानिक बनूंगी। एक ओर गृह की जिम्मेदारी है दूसरी ओर वैज्ञानिक बनने की लगन, नहीं, नहीं मैं कुमारी ही रहूँगी। हाय! पापा न जाने कहाँ चले गये। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। उसको एकाएक, फिर पिता की याद आई। आंखों में अश्रु उमड़ आये।

"क्या हुआ कला," चपला ने पीछे से आकर पुकारा। दोनों एक दूसरे से लिपटकर रोने लगीं।

"तू क्यों नहीं ब्याह कर लेती।" चपला ने कहा।

"तू तो मूर्ख है चपला। ऋण लेकर शादी होगी। मैं बन-ठन के ससुराल चली जाऊँगी। तुम लोगों का क्या हाल होगा। कैसे घर का खर्चा चलेगा, कैसे तेरी शादी होगी। कम्मो को डाक्टर बनने में अभी पाँच साल हैं। न...न...तुम लोगों को कुएँ में ढकेल कर मैं अपनी मांग भरना नहीं चाहती।"

"पर तुम तो नरेन्द्र को प्यार करती हो न। मैं जानती हूँ तेरे दिल की बात।"

"चुप···चुप···फिर ऐसी बात न मुँह पर लाना। पर तुझे भी तो वह बहुत पसन्द है। क्यों, है न। आँख उठाकर बात कर, जरा देखूं।"

"ओह दीदी, तुम कितनी अच्छी हो," और चपला अपनी बहन से लिपट गई।

इसी तरह दोनों रोते रोते सो गईं।

मास्टर साहब छड़ी लेकर आँखों से ओझल हुए ही थे कि घर की मल्किन को अपने अन्याय का आभास हुआ "हाय! यह मैंने क्या किया। घर के मालिक को घर से निकाल दिया। आग लगे मेरी जबान पर।

"हाय! क्या वे कभी न आयेंगे, जायेंगे कहाँ। उनका घर है, उनके बच्चे हैं। मैं कौन हूँ बीच में आने वाली। यह मैंने क्या किया। हाय! अब क्या करूं।" इसी परेशानी में सारी रात बीत गई। घर के मालिक न आये, न आये।

दूसरे दिन कला की नौकरी का पत्र भी आ गया। रिसर्च-इंस्टीट्यूट में वह नियुक्त कर दी गई है। एकदम ढाई-सौ रुपये। घर की मल्किन ने सुना, आँखों में आँसू आ गये। हाय! आज वे होते तो कितने खुश होते। मल्किन बेटी से लिपटकर फूट-फूट कर रोने लगी।

कला ने पीछे मुड़कर देखा। द्वार पर व्यथा की एक मूर्ति को देख कर उसका दिल दर्द से भर आया। बाल रूखे और बिखरे हुए। जूता फटा हुआ। सिर से पैर तक धूल ही धूल। मुख सूख कर आधा हो गया था। कला उनसे जाकर लिपट गई।

"मेरी कल्लो! कल्लो रानी," धूल का आकार रो पड़ा।

"चलो जी, मुँह हाथ धोओ। कपड़े बदलो। प्यार पुचकार फिर कर लेना। कम्मो! जा तो नाश्ता ले आ जल्दी से," मल्किन बोली।

"मुझे भूख नहीं है। मैं नाश्ता नहीं करूंगा," मालिक ने मुँह फुलाकर दीवार को सुनाते हुए कहा।

"चलो, चलो नखरे न करो जी। नाश्ता नहीं करूँगा! तुम कौन होते हो नहीं कहने वाले। कान खोलकर सुन लो जी, घर के बाहर तुम्हारा राज है, घर के अन्दर मेरी हुकूमत है। मैं घर की मल्किन हूँ, समझे कि नहीं। चलो, चलो, यह लो अंगोछा, क्या फकीरों की सी सूरत बना रक्खी है। वाह भाई वाह! अरे! कौन! नरेन्द्र! आओ बेटा। मैं तुम्हें ही याद कर रही थी। आओ न। अरी ओ बिम्मी, कुर्सी तो ला। नाश्ता भी।"

एक अत्यन्त सुन्दर युवक द्वार पर खड़ा था। डील-डौल लम्बा, आकृति हँसमुख। यह था नरेन्द्र।

"पापा! इनसे कह दीजिए कि चपला की जन्मपत्री इनसे मिल गई है। पूछिए, मिठाई कब खिलायेंगे ये," कला ने अपने आंचल से कुर्सी की धूल पोंछते हुए कहा।

चपला की चमक चट से टाट के पर्दे में छुप गई।

मास्टर साहब ने अपनी बेटी की ओर देखा, वह बच्चों की तरह रो पड़े। मल्किन आंचल से अपनी आँखें पोंछने लगी। नरेन्द्र ने चौंक कर कला की ओर देखा। उसका मुँह फक हो गया था।

बाँके और बन्नो

उस दिन स्कूल में खूब शोरगुल मचा। पढ़ाई-लिखाई न हो पाई। अध्यापिकाओं ने पढ़ाया भी तो कन्याओं का मन न लगा। सबके कान बाहर ही लगे हुए थे। उधर चपरासिन जो तमाशा देखने लगी तो घंटी बजाना ही भूल गई।

आपने तरह-तरह के तमाशे देखे होंगे, गुलाबो-शिताबो के, जिसमें दो सौतें एक दूसरी के सिर पर सवा सेर के घूँसे मारती हैं या रीछ-बन्दर के या नाग-नागिन के। सनेमा-ठेठर और सर्कस भी देखा होगा। पर क्या कभी आपने बाँके और बन्नो की लड़ाई का तमाशा देखा है? नहीं? वाह···वाह···तो फिर आपने देखा ही क्या है।

अजी, हमने देखा है तमाशा और वह भी बिल्कुल मुफ्त। टिकट-सिकट कुछ नहीं। हर्रा लगे न फिटकरी रंग चोखा।

बाँके चमार की बीबी बन्नो है तो रँगीली-छबीली, हँसने-बोलने, मटकने वाली। जिधर चली जाये हँसी का फव्वारा फूट पड़े। पर, उसे जरा छू तो लो, नागिन सी डस लेगी। बस यह समझ लो लाल मिर्च है।

उस दिन बाँके की जो आफत आई तो उसने जुगनू के सिर पर चपल दे मारा। और सोना, तारो, सरजू, दीपा, सब में

जुगनू बन्नो का सबसे छोटा और प्यारा बेटा है। उसको जो क्रोध आया तो उसने जुगनू के बप्पा की चिलम नाली में फेंक दी। बाँके ने बन्नों की सुरमेदानी दे मारी। बन्नो ने बाँके की जूती उछाल दी। बाँके ने बन्नो की चुनरी खेंच के फाड़ डाली। बन्नो ने बाँके की पगड़ी उतार ली।

ओय होय। सर से पगड़ी का उतरना था कि गजब हो गया। भला यह अपमान बाँके सह सकता था? कोई उसकी सर से इज्जत उतार ले और वह भी एक स्त्री और वह देखता रहे? बाँके की वीरता ने तिलमिला कर सिर उठाया। तोप जैसा मुख, लगा गालियों की बौछार करने। बन्नो भी कम न थी। उसने सुनाई दो की दस। बाँके ने मारा बन्नो को जूता। बन्नो ने बाँके के सिर पर दर्पण दे मारा। बाँके ने सिर झुका लिया, शीशा दीवार से टकराकर चकनाचूर हो गया। फिर कोठरी की अन्य वस्तुएँ भी, कंघा, बिन्दी की डिब्बी, बोतल, सीसी, बटुली, चिमटा, इधर से उधर उड़ने लगे। जब हथियार समाप्त हो गये तो बन्नो ने बाँके के बाल पकड़ लिये। बाँके ने उठाया बाँका। यह कहो खैर हो गई, बीबी हरनाम कौर वहाँ पहुच गई नहीं तो बाँके आज बन्नो को पहुँचा देता सीता महारानी के घर।

अब बन्नो ने अपना अन्तिम वार किया और धाड़े मार-मार के लगी रोने बिलखने और प्रधाना जी के पास फरियाद लेकर आई। रेणुका दीदी इस समय अपने आफिस में बैठी हुई विवाह-विच्छेद वाले नये कानून का अध्ययन कर रही थीं।

कुमारी रेणुका ब्रह्मचारिणी हैं। उन्हें पुरुषों से घृणा है। इसीलिए उन्होंने कभी विवाह नहीं किया। जब यह कालेज में पढ़ती थीं तो किसी युवक से इनका प्रेम हो गया था। एक दिन

उनका प्रेमी प्रेम-रत्न की पिटारी इनके पास रहन रख कर चला गया और दूसरे नगर में जाकर विवाह कर लिया। कुछ काल पश्चात उसने इन्हें पत्र भी लिखा और क्षमा मांगी। "पुरुष को उस स्त्री से कभी विवाह न करना चाहिए जिससे वह प्रेम करे। प्रेम तो आत्मिक अनुभूति है, अनन्त का सुख है, इसे सात फेरों के बन्धन में बाँधना अनुचित है," इत्यादि ऊँची-ऊँची बातें लिखी किन्तु वास्तविक बात यह थी कि वह ऐसी कन्या को पत्नी बनाना चाहता था जो उनके लिये लाये साईकल, अँगूठी और बटन और लाये चांदी की छड़ी, सोने की घड़ी, मोती की लड़ी। प्रेम की बातों से उनका जी नाक तक भर गया था। वह चाहते थे कि घर में ऐसी गृहणी हो जो गर्म-गर्म घी में छौंकी हुई अरहर की दाल और फूले हुए फुलकों से इनका पेट भरे।

पत्र क्या था जले में नमक छिड़कना था। रेणुका जी को उस दिन से केवल उस युवक से ही नहीं वरन् समस्त पुरुष-जाति से घृणा हो गई और उन्होंने उसे नीचा दिखाने की शपथ ली।

इस विद्यालय को उन्होंने अपना गढ़ बनाया। सबसे प्रथम उन्होंने विद्यालय में जितने भी पुरुष अध्यापक थे उनको नोटिस देकर निकाल दिया। फिर आफिस की बारी आई। स्कूल के पुराने मुंशी को हटाकर एक बालकटी छोकरी रखली गई। वह भी थी एक ही कनकट्टो। उसके आते ही आफिस हँसी-मजाक का अड्डा बन गया। तरह-तरह के नटखट छोकरों का जमघट रहने लगा। कोई कहता, "ही…ही…ही…मैं दूसरी किलास की चुन्नो का चाचा हूँ," कोई कहता, "मैं मदारी हूँ, मुफ्त तमाशा दिखाने के लिए तैयार हूँ," कोई कहता, "मैं गाने का

उस्ताद हूँ। कहिये तो कभी-कभी आप लोगों का दिल बहलाने के लिए चला आया करूँ।" इस प्रकार किसी न किसी बहाने युवक आने-जाने लगे। बात रेणुका जी के कानों तक पहुँची। उसी दिन बालकटी कनकट्टो का पत्ता कट गया। उसकी कुर्सी पर एक अधेड़ आयु की विधवा विराजमान हो गई।

फिर नौकरों की बारी आई। एक-एक कर, सबको निकाला गया और उनके स्थान पर मल्लो मालिन, चुन्नो चपरासिन, बन्नो जमादारिन, मोती मिसिराइन, और कल्लो चौकीदारिन की सेना भर ली गई।

केवल इतना ही नहीं, रेणुका जी को उन अध्यापिकाओं से भी चिढ़ थी जो विवाह कर लिया करती थीं। जिस नारी ने यह जुर्म किया बस उसकी शामत आई। उसका रहना दूभर हो जाता था। वह तंग आकर खुद ही भाग जाती और कोई चूँ न कर पाता था क्योंकि रेणुका जी के भाई स्कूल के मैनेजर थे।

इसके अतिरिक्त उनमें और भी कई गुण थे। बड़ा रोब था उनका। मजाल कोई लड़की उनके सामने हँस भी सके। रूप-रेखा भी कम भयानक न थी। नाक उनकी थी लम्बी जितनी एक प्रधाना की होनी चाहिये। नटखट लड़कियाँ दूर से भी उस नाक की नोक देख लेतीं तो ऐसे भागतीं जैसे शिवजी के त्रिशूल के सामने से दानवों की सेना।

हाँ तो, प्रिन्सीपल साहबा हिन्दू-कोड में जो तलाक़ का नियम बना है उसको पढ़ रहीं थीं। वह जीवन में प्रथम बार पछताईं कि उन्होंने विवाह क्यों नहीं किया। यदि उनका कोई

पति होता तो आज पूरा बदला उतारतीं। उसके विरुद्ध अदालत में मुक़दमा चलाकर उसका नाक में दम कर देतीं। हिन्दू क़ानून के इतिहास में तलाक़ देनेवाली वह प्रथम नारी होतीं और उनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाता।

"आजु हम सर फोड़ के रहब ई जुगनू के बप्पा का। हमहूँ का मारिसि है, हमरी मइया का गारी दीहिन है, हम अस न छाँड़ब। जो हम कोरट मां जाय कै फारकती न लेब तौ हम जुगनू कै महतारी बन्नो नाँय। हाँ।"

उनका स्वप्न टूटा। बन्नो द्वार पर खड़ी हाय-तोबा मचा रही थी। पता चला कि बाँके ने बन्नो को पीटा है। कोई पुरुष नारी पर हाथ उठाये, उनकी नाक के नीचे, भला यह वह सह सकती थीं? "मैंने तो पहले ही कहा था कि यह आदमी इस योग्य नहीं कि लड़कियों के स्कूल में रहे। बन्नो भी तो किसी से कम नहीं है, उसको बसाये हुए है। न काम करे न काज। निठल्लू बैठा बीबी की कमाई लुटाये और उसी को मारे पीटे," वह पुरुषों के विरुद्ध युद्ध का डंका बजाते हुए बोलीं।

"होर की जी। ए बन्नों बी कम नहीं," पंजाबी मेटरन बीबी हरनाम कौर बोली, "बांके ए इसने खराब कित्ता है जी। मैं किया ओन्नू, जा कम कर, तां बन्नो ओन्नू लिहाफ ऊढ़ा ले आई। बोली, हाय, हाय, मेरा बाँका बमार है, बिचारा कम की करेगा? ओस दिन जी पन्नो पनवाड़न दे नाल हँसदा बोलदा सी। बन्नो दा पनडब्बा पन्नो पनवाड़न ए दे आया है जी।"

यह रोमान्स की बात सुन रेणुका जी के तन-मन में आग लग गई। बांके को तुरन्त स्कूल के बाहर निकाल दिया

गया और उसका सारा सामान, फटे-पुराने कपड़े-लत्ते, चिलम, तमाखू, छड़ी, बीड़ी, झाड़ू, टोकरी, दियासलाई की डिब्बी, सबका सब सामान बाहर फेंक दिया गया। एक अधजली सिग्रेट का टुकड़ा कहीं भूले से पड़ा रह गया था, बन्नो मारे जलन के उसको भी मोरी में फेंक आई।

बांके लाल के जाने के पश्चात् मैदान साफ़ हो गया। अब हाते में कोई भी पुरुष न बचा था। रेणुका जी ने सन्तोष की सांस ली। एक कांटा था सो भी दूर हुआ।

कुछ दिन तो चैन से गुजरे। बन्नो खूब दिल लगाकर काम करती। झाड़ू ले दिन भर सफ़ाई सुथराई किया करती। मजाल कोई मकड़ी उसकी नजर से बच जाये। तारो, दीपू, मरजू, आँगन में पत्तियाँ बीनते और जुगनू अपने नन्हें-नन्हें हाथों से फूलों को पानी देता। और अब तो जबसे बन्नो ने बांके से नाता तोड़ लिया है प्रधानाचार्या भी उससे बहुत प्रसन्न हैं। प्रतिदिन बच्चों के लिए कुछ न कुछ मिठाई, खिलौने, कपड़े भेज दिया करती हैं। बन्नो को एक लाल रंग की रेशमी साड़ी भी दी है।

किन्तु, कभी-कभी रात के समय तारों की छाया में बन्नो को घड़ी-घड़ी अपनी ओढ़नी की और दर्पण की याद आती और आँखों में आँसू उमड़ आते, हाय, इस सीसे को बांके ने ही उसके लिये खरीदा था, गुड़ियों के मेले में, जब वह दुल्हन बनकर आई थी। उसे वह सब सुनहरी रातें याद आने लगी जब वह दीपक की रौशनी में, इस दर्पण को लेकर अपना साज-सिंगार किया करती थी। आँखों में काजल लगाती और माथे पर बिन्दी। हाय, उसके प्यार की दुनिया लुट गई। उसके

सपनों के महल टूट गये। किस मुँह से करेगी शृङ्गार और किसके लिये।

फिर एक दिन एकाएक स्कूल में बिजली सी गिरी। हरनाम कौर ने आकर रेणुका जी को भेद दिया कि हाते में आपके नाक के तले 'खडजन्तर' हो रहा है।

"अजी, दो दिण हो गये हुण, बाँके एत्थेई बराजमान है। बन्नो नू महँगाई दा पंजा रुपय्या मिलिया है ना। बाँके आया है खाणे उड़ाणे। कलतां सत्तनारायण जी दी कथा होई सी। ब्रह्मभोज वी होया। ओ पन्नो पनवाड़न वी आई सी बणी-ठणी। हुण तुसी जाणो जी। फेर कोई लड़ाई झगड़ा होया तां मैन्नू न दोष देणा। ए पनवाड़न बड़ी लम्बरी है, बन्नो नूं मूँड-भाड़ के चल देणा है ओसणे। चार रुपय्ये दा ठर्रा आया सी। रात बीते पीना पलाना होन्दा रया सी।"

रेणुका जी ने सुना और उनके क्रोध का पारा चढ़ गया। खूब बिगड़ीं। बन्नो ने सुना तो दौड़ी हुई आई बोली,

"अय, दीदी जी। महिंते का कसूर हुई गवा। हुजूर, आजु सफाई तौ खूब बढ़िया कीहिन है। फरस देखौ, का सीसा सा चमक रहा है, चमाचम। का और साफ कर देई।"

रेणुका जी ने उसको सिर से पैर तक देखा। वही लाल रंग की साड़ी पहने हुए थी, आँखों में काजल भरा था और होटों पर पान की लाली थी। बाहों में नई-नई चूड़ियाँ थी। बड़ी रँगीली-छबीली लग रही थी। होटों के झरने से हँसी फूटे पड़ रही थी। आँखों में शरारत की चमक समाती न थी।

"हुजूर। यह चूड़ी ?" बन्नो हँसते हुए बोली, "ई जुगनू के बप्पा लाये हैं हमरे लिये, मेले से। बहुत पछतात रहे। सरकार, एक अरज है मेरी, इत्ती बार माफी दै दीन जाय, मेटरिन जी कहिन हैं कि जुगनू के बप्पा को घर से निकास दयो। सरकार, वे घर का मालिक हय, हमार पति हय, हम कस निकास देई। हम ऊँच जात कै हय जमादार, अजुध्या कै वासी। हमार नानी की परनानी की अम्मा सीता महारानी के आँगन माँ झाड़ू बहारू करत रहीं। उनकी अम्मा की सासू जी राजा रामचन्द्र जी और लछिमन जी के पलुए-सलुए, निकर-सिकर, बिब-सिब धोवा करत रहीं। सीता महारानी उनका आपन बिटिया जइस मानैं औरु जो एक दिन खुस भईं तो अम्मा का आसिरबाद दिहिन कि जाओ तुहार घर की बहू-बेटी सदा पतिबरता हुइहैं, पती कै सेवा करिहैं और तुहार घर सदा दूधन-पूतन तें भरा रहिहै। ई जुगनू तौ सीता महारानी की देन है। हाँ औरु का हजूर। एक अरजु औरु है सरकार, आजु महिंका छुट्टी दै दयो, उयि टिकसु लाये हैं। तनिक खेल तमासे हुइ आई।"

प्रधाना जी हक्की बक्की हो सीता महारानी की नातिन को देख रही थीं। कहें तो क्या कहें। अभी वह अपने आश्चर्य में डूबी हुई थीं कि बन्नो चूड़ियाँ खनखनाती हुई फिर लौट आई, बोली. "हुजूर, ई मेज पर नन्हा सा सीसा और लिपटिक धरा है न, कमला बिटिया कै अम्मा यहाँ भूल गई रहीं, हमहूँ का दै दयो उधार। हुजूर हम मांग लेब मुला चोरी कबहू न करब। इस्कूल का नमक खावा है न।" और प्रधाना के मौन को हाँ समझ वह 'लिपटिक' ले चम्पत हुई।

उसके जाने के बाद रेणुका जी को होश आया। हरनाम कौर को डांट पड़ी, फिर मालिन को, फिर चपरासिन को। सबने

यही राय दी कि बन्नो को निकाल दिया जाये। रेणुका जी ने कहा ठीक है, और बन्नो को नौकरी से हटाने की आज्ञा देने के लिये उन्होंने लेखिनी उठाई। इतने में ही बन्नो का परिवार तमाशे जाने के लिए उधर से निकला। पहले गुलाबी पाग में छैल-छबीला बाँके, फिर बनी-ठनी बन्नो, फिर सोना, तारो, सरजू और दीपा। बाँके ने दूर से ही रेणुका जी को देखा और दुल्हा के समान कुछ शर्मा कर सलाम किया, फिर बारी-बारी बन्नो ने, सोना, तारो, सुरजू ने भी किन्तु जब बाँके के कन्धे पर चढ़े जुगनू ने अपने नन्हें-नन्हें हाथ उठाकर अपने गुलाबी कन्टोप से लगाये तो रेणुका जी की उँगलियों से क़लम गिर गई और उनके जीवन की रेत पर प्यार की बाढ़ सी उमड़ आई।

कश्मीर का फूल

"यह तस्वीर देखिये मम्मी, यह। कुछ समझ में आया आपकी," नन्हीं सी बालिका छाया ने लक्ष्मी के सामने एक चित्र पटक कर कहा और फूल से गाल फुला कर बड़े क्रोध में खड़ी हो गई।

"ऊँहूँ, अब तू मुझे सीने भी न देगी। सारा सामान यूँ ही पड़ा हुआ है और कल जाना है," माँ ने झुँझलाकर कहा, किन्तु फिर चित्र के रंगीन दृश्य ने उसके मन में भी उत्सुकता उत्पन्न की और उठाकर देखने लगी। काश्मीर की झील, सायंकाल का झुटपुटा, एक झोपड़ी वाला बजरा, एक मांझी। दूर पर पर्वतों की नीली कतारें।

"कुछ समझ में आया आपकी," छाया ने फिर पूछा "हम कोठी में हरगिज़ न रहेंगे। इसी शिकारे को आप किराये पर ले लीजिये। और इसी में चलकर रहिये। पापा से कह दीजिए हांजी बाबा को अभी-अभी तार लिख दें और ठीक कर लें। यही बोट और यही मांझी। आप कुछ करती ही नहीं मम्मी। देखिये कैसा प्यारा बूढ़ा है, सफ़ेद दाढ़ी, हम इनसे रात के वक्त कहानियाँ सुनेंगे। अरे, देखिये यह लम्बा सा कुर्ता, क्या कहते हैं इसे, अरे हाँ, आपने बताया था, फिरन, हाँ मम्मी हमारा फिरन

बन गया या नहीं। मम्मी, हम यह फ्राक पहिन कर हरगिज़ कश्मीर न जायेंगे। हाँ, सब हाँजी हँसेंगे। कहेंगे बड़ी आई है अंग्रेजों की नानी। आज अरुणा जी कहने लगी, बड़ी खराब है यह अरुणा की बच्ची। कहने लगी, 'तू कश्मीरी थोड़ा ही है, तू तो हिन्दुस्तानी है। न तुझे कश्मीरी भाषा बोलनी आये, न तेरे पास चोगा है। तूने तो कश्मीर देखा तक नहीं है। अगर तू कश्मीरी है तो मकान में क्यों रहती है। जा किश्ती पर झोपड़ी डालकर रह न।' सबके बीच में मेरा अपमान कर दिया। सब लोग हँसने लगे।" छाया की बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू डबडबाने लगे।

"अरी मेरी नन्हीं सी जान। बस इतनी सा बात पर रो पड़ी तू, पगली," लक्ष्मी ने अपनी गोदी में भर कर उसके आँसू पोंछ लिये, "कौन कहता है तू कश्मीरन नहीं, तेरी माँ कश्मीरन, तेरा बाप कश्मीरी, और तेरे नाना के परनाना तो कश्मीर के रहने वाले थे। अरी, तू तो कश्मीर का फूल है।"

"तो फिर आपने हमारे लिये फिरन क्यों नहीं बनाया। यह देखिये, कपड़ा अभी तक पड़ा हुआ है।" और वह अपने फिरन को याद कर रोने लगी।

"अरी मेरी नन्हीं रानी। रो न, अच्छा कल तेरे लिये जरूर फिरन बना दूंगी। अब तो चुप रह," लक्ष्मी ने उसे कलेजे से लगाकर कहा।

"तो फिर हमारे लिये बिल्कुल ऐसा ही बनाइयेगा...ओ हो कहाँ गई...अरे हाँ...यह रही।" छाया ने अपनी कापी में से एक तस्वीर अपनी माँ को दिखाई।

यह एक कश्मीरी बालिका का चित्र था। वह शाली कूट रही थी। गाल सेब से लाल-लाल, आस्मानी रंग का फिरन, कानो में चाँदी के बड़े-बड़े झुमके और गले में हार।

"मम्मी, बिलकुल ऐसी ही पोशाक बनाइयेगा, लम्बी-लम्बी पैरों तक। अब हम फ्रॉक कभी···कभी न पहनेंगे। मैं फाड़ डालूंगी अगर अब कोई नया बनाया तो। आप किसी का कहना नहीं मानती हैं, पापा भी यही कहते हैं। हम कश्मीरी हैं कोई अँग्रेज थोड़ा ही हैं जी। आप क्यों नहीं फ्रॉक पहनती? आप मुझ पर बहुत जुल्म करती हैं। हाँ।"

"अच्छा अच्छा सुन लिया, अब जान न खा," लक्ष्मी ने सुई में तागा पिरो कर कहा।

"अच्छा मम्मी। वह कौन सा गीत आपने मुझे सिखाया था, वह कश्मीरी गीत, हय, मम्मी, हम तो भूल ही गये। अरे···हाँ···याद आ गया·········

"बागे निशात के गुलो
नाज़ करान करान वुलो"

"अरे भई, वह हमारी ऐनक कहाँ है, उफ, कितनी गर्मी है, ओहो, कहाँ खो गई मेरी ऐनक, सुनती हो जी···सुनती हो जी··· तुमने मेरी ऐनक तो नहीं देखी," जीवन नाथ ने कमरे में घुसते हुए कहा।

"मुझे नहीं मालूम। दिन भर तुम्हारी ऐनक खोजती रहूँ। और जैसे कुछ काम ही नहीं है। होगी तुम्हारी मेज़ पर," लक्ष्मी ने वहीं बैठे-बैठे कहा। ऊपर सिर उठाकर देखा भी नहीं और माथे से पसीना पोंछ कर सिलाई की मशीन चलाती रही।

"अरी छाया, तू ही ढूंढ दे। मेरी ऐनक नहीं मिल रही है। तुझे टॉफी दूँगा।"

"अरे, वह क्या है, वह।"

"कहाँ बेटी।"

"अरे, वह आपकी नाक पर क्या लटक रही है।"

"अरे, हाँ, ठीक तो है। ही···ही···ही और मैंने सारा घर छान डाला। कल तुझे टॉफी दूँगा," जीवन नाथ ने हँसते हुए पत्र खोला और पढ़ने लगे।

"यह देखो पापा, यह तस्वीर। देखी आपने, बस हम इसी किश्ती में जाकर रहेंगे, हांजी बाबा के साथ। आप आज ही तार भेज दीजिए। हम कोठी में नहीं रहेंगे। आप तो कुछ बोलते ही नहीं।"

"लो, यह सावित्री का पत्र आया है। सुनती हो, लिखा है बड़ी परेशानी में हूँ। फौरन नौकरी की तलाश करो।"

"तो यहाँ क्या नौकरियों का भंडार है। वह तीन बच्चों को लेकर नौकरी करेगी, श," लक्ष्मी ने कहा।

"तो क्या करूँ, बताओ। बड़ी मुसीबत में है बेचारी, अभी तो कुछ रुपये भेज दूँ। फिर देखा जायेगा। पचास रुपये ठीक हैं?"

"पचास क्यों, पच्चीस भेज दो, सौ रुपये पहले दे चुके हो। कोई कहाँ तक देता रहे, तुम्हारी भी आमदनी कोई बहुत नहीं, फिर अब कश्मीर का खर्च। तुम तो वही...टीचर के टीचर रहे। और लोगों को देखो, ऐरे गैरे नत्थू खैरे अँगूठे का निशान बनाकर

कोई एम० पी० हो गया, कोई लीडर। तुम तो एम० ए० हो, फिर भी वहीं के वहीं। और जवाहर भाई तुम्हारे रिश्तेदार... तुम्हारे बाप के चचा के फ़लाने का दामाद, समझो अपना दामाद। कहो न जाकर, तुम्हें राजदूत बनादें। बस कहने भर की देर है। और तुम हो कि ऐंठे बैठे हो। कश्मीरी लोग सबके सब ऐसे ही हैं, सिड़ी और मस्त।"

"ओहो! तुम तो शेखचिल्ली की बातें करती हो। तो कहो कितने रुपये भेज दूँ। कश्मीरियों की दुर्दशा देख कर आँखों में आँसू आ जाते हैं।"

"तो तुमने क्या सबका ठेका लिया है। जवाहर भाई को कहो, कुछ करें न अपनी बिरादरी के लिये।"

"वह कश्मीर क्या सारी दुनिया का बोझा उठाये हुए है। अगर आज जवाहर न हो तो हिन्दुस्तान का वही हाल हो जो कोरिया का हुआ। और, वह जो कुछ हो सकता है, कर ही रहा है बेचारा। हाँ, तो कुछ रुपये दे दो न।"

"लो, यह पच्चीस भेज दो। फिर देखा जायगा।"

जीवन रुपये लेकर चला गया। छाया अपनी चित्रावली में चित्र काटकर लगाने लगी। कमरे में सन्नाटा छा गया। केवल मशीन की घर्र···घर्र···। लक्ष्मी का मन घबरा गया। उसे याद आया, कई वर्ष हुए यही सावित्री उसको दुल्हन बनाकर इस घर में लाई थी और भाभी को सिर आँखों पर रक्खा था। आज वही लड़की मुसीबत में है। उसका पति उन्नाव के एक जमीदार की रियासत में मैनेजर था। जमीदारी ज़ब्त होने के बाद इन्हें नौकरी से निकाल दिया गया। सात साल से बेकार हैं।

इन्टर फेल, इन्हें कहीं नौकरी भी नहीं मिल सकती। गेहूँ का व्यापार किया, उसमें घाटा हुआ। आजकल पत्नी का ज़ेवर बेच-बेच कर घर का खर्च चला रहे हैं। तीन बच्चे हैं। सत्तो मिडिल पास है। नौकरी कहाँ मिलेगी। एम० ए०, बी० ए० तो मारी-मारी फिरती हैं।

हाय! उसका पति दो साल से बेकार है। कैसे गुजारा करती होगी बेचारी। निम्न मध्य-वर्ग की भी कैसी दुर्दशा है। यह ठीक कहते हैं कि हमारे वर्ग की नय्या डूब रही है, यदि हमने एक दूसरे को थाम न लिया तो सब गुड़ुप। और यदि इन्हीं की नौकरी छूट जाये तो हम कहाँ जायेंगे। विशेष कर कश्मीरी लोग बनिया-महाजन नहीं, नौकर पेशा आदमी, पढ़ने लिखने वाले और ईमानदार। झूठ, फरेब, चोरबाजारी हमारे स्वभाव में नहीं। बस एक सत्य का सहारा है। और यदि हमने डूबते हुए को न बचाया तो उसका भूत हमें ले डूबेगा। एक खतरे की आशंका से उसका मन कांप गया।

जीवन का परिवार कोई लम्बा चौड़ा नहीं, घर में वह है, उसकी पत्नी, बालिका और एक पुराना नौकर लछिमन, बस। सत्तो उसकी चचेरी बहन है। उसके माँ-बाप बचपन में ही मर गये थे। वह इसी घर में पलकर बड़ी हुई और यहीं से उसका विवाह हुआ। किन्तु अनाथ थी इसलिये उसको सम्पन्न घर न मिल सका था।

जीवन एक लखनऊ के किसी कालेज में अध्यापक है। आजकल गर्मियों की छुट्टियाँ हैं। ये लोग कश्मीर जा रहे हैं। कश्मीरी होकर भी इन्होंने अभी तक अपना देश देखा नहीं है। पिछले दस वर्ष से यह लोग कश्मीर के बर्फीले पर्वतों के स्वप्न

देख रहे हैं, उस समय से जब कि छाया पैदा भी न हुई थी। अब वह आठ वर्ष की हो चुकी है किन्तु अभी तक उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी थी। जीवन का वेतन बहुत कम था। ढाई सौ रुपये आजकल मँहगाई में होते ही क्या हैं। एक साल छाया बीमार पड़ गई, जितने रुपये कश्मीर के लिए जोड़-जोड़ कर रक्खे थे वे सब ख़र्च हो गये। एक बार मास्टर साहब ने अपनी जमा-पूँजी पुस्तकालय को दे दी। तीसरी बार उनके कालेज के मुंशी की लड़की के विवाह का दिन निकल आया। पांच सौ उधार दे आये।

दस वर्ष बाद, यह कहिये, जीवन में पहली बार अपने देश जाने का समय आया। कल के लिये सीटें ले ली गईं, सामान करीब-करीब बँध गया था। परसों सबके सब पहाड़ों की सैर करेंगे। उफ़, किस क़दर गर्मी है। सत्तो को पचास रुपये भेज दूँ पचीस कम होंगे, लक्ष्मी ने अपने माथे से पसीना पोंछ कर सोचा। आज तो पंखा भी बिगड़ गया। यह गर्मी भी नर्क की आग है। किन्तु कश्मीर में तो ख़ूब ठंढ होगी। ओहो, लछिमन के लिए गर्म कोट तो बनवाया ही नहीं। बूढ़ा आदमी है, बेचारा सर्दी से अकड़ जायेगा। उँह, कश्मीर जाकर देखा जायेगा। आह कश्मीर। हर्ष की हल्की-हल्की मुस्कान उसके होंटों पर थिरकने लगी। बर्फ़ीले पहाड़, रुपहरी झील, रंगीन शिकारे…। अमरनाथ के दर्शन तो जरूर करूँगी। खर्चा बहुत होगा। उँह, अब चाहे जो भी हो। चाहे सोने की चेन बेचनी ही क्यों न पड़े। पहाड़ के ऊपर डेरा डालकर रहेंगे, खेमों के अन्दर, देवदार और चीड़ के वृक्षों के नीचे। किन्तु छाया का मन है कि बोट में रहेंगे। अच्छा यही सही, किन्तु हम दोनो जगह बारी-बारी रह सकते हैं। न जाने कितना सुन्दर होगा वह निशात का बाग़,

उसने सोचा और फिर उसे वह गीत याद आ गया जो उसको बचपन में उसकी माँ ने सिखाया था। उन्होंने वही गीत अपनी माँ से सीखा था। इनमें से किसी ने भी कश्मीर देश देखा ही न था किन्तु फिर भी वह यही समझती थीं कि कश्मीर उन्हीं का देश है और वह अपने वतन की याद में प्रायः वहीं का गीत गाया करती थीं, "बागे निशात के गुलों।"

दूसरे दिन लक्ष्मी बाजार से कुछ आवश्यक वस्तुएँ, रास्ते के लिए फल-मिठाई इत्यादि खरीद कर आई तो देखती क्या है, घर में खूब उधम मचा हुआ है। आँगन में न जाने किस फटेहाल फ़कीर का सामान फैला हुआ था। एक फटा, गन्दा, अधखुला बिस्तर-बन्द, जिसके अन्दर से मैले-कुचैले, फटे-पुराने कपड़े बाहर निकल कर बिखरे हुए थे। एक पुराना ट्रङ्क, एक डलिया, लोटा, गिलास आदि। एक कमरे में दो-चार बच्चे खूब शोर मचा रहे थे और अन्दर कोई नारी फूट-फूट कर रो रही थी। अरे, यह तो सत्तो है।

"नहीं, तुम्हारे रुपये मुझे नहीं मिले। मैं तो अपनी अँगूठी बेच कर यहाँ तक आई हूँ। तुम्हारे बहनोई चार दिन से लापता हैं। कुछ दिमाग खराब हो गया है, बेकार बैठे-बैठे। रोज मार पीट, दंगा, फ़साद। उस दिन मीना को जो धक्का दिया तो वह पत्थर पर जा गिरी, सिर फूट गया। राधा को तो दिन में दस बार घूंसे मारते थे। उसने चाय मांगी तो घूंसा, साबुन मांगी तो घूंसा। बेकारी ने उनका दिमाग़...। अब तो खैर कोई उम्मीद ही नहीं है। भाई, मुझे नौकरी दिलवा दो। कहीं पचास रुपये की, आया की ही सही। तुम्हारे पांव पड़ूं ···वरना इसी दहलीज पर सिर पटक-पटक कर मर जाऊँगी। लेकिन तुम तो कश्मीर···।"

लक्ष्मी ने अन्दर जाकर देखा, सत्तो जीवन के पांव पकड़े हुए पड़ी थी। दरिद्रता और दीनता की प्रतिमा को देख कर उसका दिल दहल गया। जीवन ने बहिन को उठाकर गले से लगा लिया और दिलासा देते हुए कहा, "अरे, कौन जा रहा है कश्मीर। तू यहाँ आई है और मैं चला जाऊँगा, पगली। हाँ, लक्ष्मी और छाया शायद चली जायें। क्यों घबराती है। कुछ न कुछ किया जायेगा। नौकरी मिल ही जायेगी, नहीं तो भाई का घर तो है ही...बस...चुप, चुप रोना नहीं, सब ठीक हो जायगा......बस, बस।"

"नहीं भाई, मेरी तो किस्मत फूट गई। हाय, वह अब कभी, कभी लौटकर न आयेंगे।"

"नहीं...नहीं...जायेगा कहाँ। अभी उसे कान से पकड़ कर लाता हूँ। पुलिस को खबर दे दूँ...जा जा...बच्चा रो रहा है... अरे, भई सुनती हो...सुनती हो...दूध मँगवा लो बच्चों के लिये, जरा सा हलवा भी बनवा लो।"

सावित्री अपनी भाभी से मिलकर और उसके आंचल से अपने आँसू पोंछ कर रसोई घर में दूध गर्म करने के लिये चली गई थी। लक्ष्मी अकेली रह गई। उसके मन में झुंझलाहट भी थी और दुःख भी। इस सत्तो को भी आज ही आना था। महीना भर और रुक जाती। इन्होंने तो कह दिया है कि तुम जाओ। यह सब कहने की बातें हैं। इन सबको यहाँ मुसीबत में छोड़ कर मैं क्या कश्मीर की हवा खाने जाऊँगी। वह भी क्या करे, बेचारी किस के पास जाये।

किन्तु छाया को वह क्या कहेगी। कितनी आस लगाये बैठी

थी, कश्मीर जाने की। आज सवेरे ही कह रही थी, "मम्मी, हमने एक अजीब सपना देखा कि हम कश्मीर जा रहे हैं। बार-बार रेल पर चढ़ते हैं और बीच में रुक जाते हैं। कश्मीर पहुँच ही नहीं पाते। मम्मी, वहाँ की झील क्या बहुत बड़ी है? अहा, हम दिन भर हांजी बाबा के साथ शिकारे की सैर किया करेंगे।" और जब वह सुनेगी कि हम अब कश्मीर न जायेंगे तो उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू उमड़ आयेंगे। हाय! अपना देश क्या हम कभी न देख पायेंगे। हाय क्या करूँ।

"मम्मी, मम्मी," छाया ने अन्दर घुसते हुए कहा, "मम्मी, देखिये, लछिमन ने सब सामान खोल दिया। कहते हैं, हम कश्मीर न जायेंगे, रेल टूट गई है। हमें बहुत चिढ़ाते हैं, बड़े झूठे हैं। नहीं, नहीं, झूठे नहीं, हमारा मतलब है, कहानी कहते हैं। आप उन्हें डांटती ही नहीं। मम्मी, आप चुप क्यों हैं? अच्छा मम्मी, रेल टूट गई तो अच्छा ही हुआ। हम रुक गये। वरना अगर मोहन, मीना और राधा को छोड़कर हम जाते तो हमें बड़ा दुःख होता। और जाना पड़ता क्योंकि आपने टिकट ले लिये थे, चलो अच्छा हुआ। लेकिन रेल बन जायेगी तो हम कश्मीर जरूर-जरूर जायेंगे। मम्मी, हमारा बड़ा मन है, हम कश्मीर जायें और किश्ती में रहें...और हांजी बाबा से कहानियाँ सुनें। अरे...हाँ, हांजी बाबा को तार भेज दो कि हम अब न आयेंगे। वह बेचारे इन्तजार करेंगे। उँह, कितनी गर्मी है, पंखा भी नहीं है, मम्मी, हमको यह दे दीजिए...यह फिरन का कपड़ा...अब तो फिरन बनेगा नहीं। दे दीजिए ना...मम्मी बात यह है, राधा का फ्रॉक फट गया है, उसे दे दूँ। उसकी मम्मी बड़ी वैसी हैं, कपड़े नहीं बनवाती। बेचारी के पास रिबन तक नहीं है और उसके पापा उसको पीटते हैं। बड़े वह हैं न," यह

कहकर उसने फिरन का कपड़ा माँ से छीन लिया और सिर तोड़ कर भागी। कुछ दूर जाकर वह फिर लौट आई, बोली, "अरे हाँ मम्मी, हांजी बाबा को यह भी लिख दीजिएगा कि हम अगले साल जरूर उनके पास आयेंगे। अच्छा मम्मी, भूलियेगा नहीं। हय, मम्मी, आप कब जायेंगी, कश्मीर," छाया ने माँ के गले में बाहें डालकर कहा।

"क्या करूँगी कश्मीर जाकर बेटी। मेरा कश्मीर तो मेरी गोद में सिमट आया है, अपने सारे फूलों को लेकर", माँ ने उन झील सी झिलमलाती आँखों को और फूल से गालों को चूमते हुए, आँसुओ की ओस से भिगोते हुए कहा।

कजली का प्रेमी

उस दिन रात के लगभग दो बजे कजली कोठेवाली के बैठकखाने में ठांय-ठांय गोलियाँ चलीं। मोहल्ले वालों के दिल धड़कने लगे। डर के मारे सबकी सांस बन्द हो गई। लोग कानों में तेल डाल पड़ गए। जो जाग रहे थे, उन्होंने चादर में मुँह लपेट लिया, जो गप्प लड़ा रहे थे वे खट से लम्बी तान पड़ गए। गली को सांप सूंघ गया।

धीरे धीरे गोलियों की आवाज़ बन्द हुई। चीख-पुकार रुक गई। सड़क पर मोटर घरघराती हुई, अपने भयानक भोंपू से भूत जगाती हुई दूर जाकर चुप हो गई। गली में सन्नाटा छा गया।

किसी ने चादर में से ही दो उँगलियों की कैंची बना कर बुरकेवाली की तरह झांक कर देखा। किसी ने खिड़की के सूराख से नाक लगाई। कोई लालटेन लेकर डाकुओं को भगाने निकल आया। कजली के कोठे पर अंधेरा घुप था। मोहल्ले वालों की जान में जान आई।

सवेरा हुआ, मकानों के झरोखे, किवाड़ और खिड़कियाँ खुलीं और साथ ही मुहल्ले वालों की वीरता के ताले भी, और सबके सब तीसमारखाँ बन, छाती फुलाकर बाहर निकल पड़े।

रमजान चाय वाले की, शमशेर शरबत वाले की, मिट्ठू मिठाई वाले की, और लल्लन तम्बोली की बन आई। लोग दो-दो, चार-चार के गिरोह में आते और तरह-तरह के क़िस्से उड़ाते। आज रमजान की चाय का रंग, मिट्ठन की जलेबी का स्वाद और लल्लन की नन्हीं गिलौरी की बात कुछ और ही थी।

रात की सन्सनीदार घटना, इतवार का दिन, चाय के पानी का धीमी-धीमी सुरसुराहट। किस्सेबाजों के दिमाग़ की केतली में उबाल आया और कल्पना धुएँ की तरह ऊपर उड़ने लगी। बांकेमल पहलवान इस दिलेरी से घटना का बयान करने लगे जैसे छाती पर गोली खाकर आए हों। बोले, "छक्के छुड़ा दिए साले पुलिस वालों के, दस को पछाड़ कर मरा, हाय, हाय छलनी हो गई थी उसकी देह। खून का वह फव्वारा निकला कि बस। क्या दसा होगी बेचारी कजली की। एक ही तो था उसका बेटा। आ ह...हा...क्या फिरकियां लेकर नाचता था, जैसे सचमुच के कृष्ण जी हों। भला नाचना भी कोई जुर्म है। यही तो बात है—चोर और लुटेरे फिरें मूंछों पर ताव दिए और हँसने-बोलने वालों पर गोलियाँ चलें। यह कहो कजली ने कोतवाल को नजराना नहीं दिया, अब सजा भुगत ले। बेटा मारा गया, खुद बैठी है हवालात में।"

उधर पुलिस वालों के अड्डों में भी खूब गर्मा-गर्मी रही। शेरसिंह कान्सटेबुल ने डींग हांकते हुए कहा, "ऐसी मुँहकी खाई बदमाशों ने, सालों को छठी का दूध याद आ गया। कजली का पूत तो वहीं ढेर हो गया, इन्सपेक्टर साहब ने बस एक गोली में कर दिया काम तमाम। चंडी का बच्चा तो पीछे की खिड़की से कूद नौ दो ग्यारह होने वाला था, यह कहो मैंने उसकी टांग घसीट ली। जिस डाकू ने बड़े-बड़े कत्ल कर डाले, उसे मिन्टों में चित कर दिया।"

धीरे-धीरे भेद खुला। पुलिस ने चण्डी डाकू का पीछा करते हुए कजली के कोठे पर धावा बोला। पहले तो गोलियों की बौछार हुई, फिर हाथापाई और गुत्थमगुत्था हुआ। लेकिन जब एक कान्सटेबुल कजली बाई के झोंटे घसीटने लगा तो मिरासियों की मंडली में जोश उमड़ पड़ा। किसी ने तबला दे मारा, किसी ने सितार उठाया किसी ने घुंघरू। कन्हैया ने किसी के हाथ से बन्दूक छीन ली और ठांय ठांय करने वाला था कि उसी क्षण इन्सपेक्टर की पिस्तौल से मारा गया। और दाढ़ी-मूँछ वाला अजनबी हिरासत में ले लिया गया।

कुछ दिन पुलिस की चौकियों में हर्ष की हलचल सी रही। कान्सटेबुल मूँछों पर ताव दिये शेखियाँ हांकते। तहक़ीक़ात हुई, भेद खुला, मालूम हुआ जिस अजनबी को गिरफ़्तार किया था वह चण्डी डाकू नहीं, सीतापुर का तबलची था।

एक नर्तकी के केश खींचना, एक मीरासी लड़के को शूट करना, एक तबलची को गिरफ़्तार करना यह कम दिलेरी का काम न था। कान्सटेबुल को हेडकान्सटेबुल, सब-इन्सपेक्टर को इन्सपेक्टर और इन्सपेक्टर को डिप्टी साहब की पदवी मिली।

× × ×

चण्डी डाकू का खून खौल रहा था। छाती में धू धू आग सी जल रही थी जिसने उसके आँसुओं को, उसके हृदय की कोमल भावनाओं को भस्म कर दिया था।

राधे बिहारी सारंगीवाला उसको पिछली रात मिला था। जब कजली के कोठे पर हमला हुआ तो वह एक छत से दूसरी छत कूदता हुआ निकल भागा था। कल रात को चण्डी से भेंट

हुई। आँखों देखा हाल सुनाया कि पुलिस ने किस तरह धावा बोला, ठोकरें मारी, कजली के बाल नोच-नोच डाले और राधा-कृष्ण की रास रचाने वाले उस कन्हैया की छाती में गोली दाग दी। "हाय हाय ऐसी तड़पी है उस बच्चे की लहास मालिक, ज्यूँ जल बिन माछी," राधे फूट-फूटकर रोने लगा।

कन्हैया चण्डी का इकलौता बेटा था, कजली से। कई वर्ष हुए चण्डी प्रथम बार डाका डालकर आया था। पुलिस इसका पीछा कर रही थी, उस रात किसी नर्तकी के मकान का द्वार खुला देखकर वह ऊपर घुस गया था। कजली ने एक नज़र भर उसको देखा, चौड़ी छाती, फूले हुए पुट्ठे, फड़कते हुए होंट। दिल में दर्द उठा। उस समय वह रंगीली-छबीली थी। वेश्या होते हुए भी ऐसे प्रेम की प्यासी थी जिसमें मोल-तोल न हो, बस दिल का रिश्ता हो। हर नारी वेश्या हो या घर की इज्ज़त-दार बहू जीवन में एक बार भूल अवश्य करती है। कजली भी चूक गई। पल भर में वह एक डाकू के हाथ बिन मोल बिक गई और अपने प्रेम की घनी छांह में चण्डी को छुपा लिया। यहीं पर उसके जीवन के सबसे रसीले दिन कटे। कन्हैया उसी प्रेम का सुनहरा पुष्प था।

कुछ दिनों के पश्चात् चण्डी फिर अपने कारोबार में लग गया। उसने अभी तक कोई सैकड़ों चोरियाँ की हैं। दस बीस डाके डाले हैं। दो-चार को मौत के घाट उतार चुका है। पुलिस वर्षों से उसके पीछे है, उसके सिर पर इनाम भी है किन्तु वह कभी फन्दे में न आया।

चण्डी ने अपने गिरोह में कन्हैया को कभी न शामिल किया था। वह यह भी न जान पाया कि उसका बाप ज़िले का नामी

डाकू है। यह भेद केवल तीन व्यक्ति जानते थे, चण्डी, कजली, राधे और इन्सपेक्टर।

किन्तु अब उसे अपनी भूल का ज्ञान हुआ। डाकू के बेटे के लिये ईमानदारी के द्वार सब बन्द हैं। आज वह भी किसी गिरोह का सरदार होता तो कुत्ते की मौत तो न मरता। फिर उसे और कई ऐसी घटनाओं का ध्यान आया। शमशेर बहादुर जब न पकड़ा गया तो पुलिस ने उसके भाई की नोन-तेल की दुकान लूट ली। यह कहो कि वह पहले से ही भाँप गया था, चट से रफू-चक्कर हुआ। अब तो वह भी गुण्डों का सरदार है और मजाल हुकूमत उसको छू भी सके।

इन सब बातों को सोंच-सोंच कर उसका मन व्याकुल हो उठा। उसे अपने ऊपर झुँझलाहट हुई। यह काम करने का समय है, इसका वह निश्चय कर चुका था। खून का बदला वह खून से लेगा। जिसने उसकी निर्दोष सन्तान की हत्या की है, वह उसी के बेटे पर अपना बदला उतारेगा।

समय कम था। पुलिस के भेदियों ने उसको चारों ओर से घेर लिया था। उसका गिरोह टूट गया था। हीरा को पुलिस ने पकड़ लिया था, जो कहीं कबूल बैठा तो? अंगनू, छेदा मारे गये। कल्लन को देखो कितना उदण्ड हो गया है। मुँह पर जवाब-सवाल करता है। साले को गठकतरी की विद्या, लट्ठबन्दी, सेंध लगाना, डकैती, किसने सिखाई?

वह दो दिन का मेहमान है, किन्तु अपना कर्त्तव्य निभा कर मरेगा। जिस डाकू ने अपने खून का बदला न लिया वह भवानी के सामने क्या मुँह दिखायेगा। परलोक में अपने बेटे से किस प्रकार आँखें मिलायेगा।

आज सवेरे उसे समाचार मिला था कि ठाकुर विजय सिंह इन्सपेक्टर का बेटा छुट्टियाँ बिताने के लिये अपने ननिहाल में आया हुआ है, घर सोनागढ़ गाँव में है, यह लोग वहाँ के पुराने जमींदार थे।

चण्डी ने चारों ओर देखा। आकाश पर तारे जगमगा रहे थे। बग़ीचे में सन्नाटा था। किसका बाग़ है यह ?

दूर.........दूर सड़क के उस पार, नागिन के फन के समान बल खाती हुई मोटर की रौशनी निकट आ रही थी। चण्डी चौंक पड़ा। उसका खंजर चमक उठा। उसकी बाँहों की नसें मारे जोश के फड़कने लगीं। उसका मन यही चाह रहा था कि कोई बैरी उसका पीछा करे, ललकारे वह लड़े और मर मिटे। उसे अब जीने की चाह नहीं। मोटर की रौशनी सड़क की अँतड़ियों को तलवार की तरह काटती हुई निकट आई और सट से निकल गई।

चण्डी को निराशा हुई। प्रतिहिंसा के भूत ने उसकी पीठ पर कोड़ा मारा। उसे होश आया। उसने चारों ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखा, यहीं कहीं है सोनागढ़। अरे, यहीं तो है। बिशुनपुर से आते हुए रास्ते में एक शिवालय मिला था, फिर एक कुआँ, फिर एक पनचक्की...फिर खण्डहर...फिर सुनसान जंगल...अरे, उसी शिवालय के पीछे तो है वह सोनागढ़।

उसका खून जोश मारने लगा। कुछ कर डालने के लिए उसकी उँगलियाँ फड़क उठीं। वह उठा, पेड़ का सहारा लिया, कमर को टटोला, खंजर की धार का निरीक्षण किया। उसने इरादा कर लिया।

सोनागढ़ के ताल्लुकेदार का मकान सन्नाटे में डूबा हुआ था। सामने का फाटक बन्द था। उसने कुछ काल तक कान लगाकर सुना, पेड़ में एक परिन्दा फड़फड़ाया और फिर सन्नाटा छा गया। एक-एक पत्ता, मकान की एक-एक ईंट चुप थी जैसे किसी की प्रतीक्षा में हो और टूटी हुई दीवार अपनी बाँहें खोले उसे बुला रही थी। वह दीवार को लाँघ कर आसानी से अन्दर पहुँच गया। सामने नीम का पुराना पेड़ था, उसी के तने पर अपने तन को सांप के समान लपेटकर उसने चारों ओर देखा। इस घर से उसका पुराना सम्बन्ध था। पाँच वर्ष हुए वह यहाँ इसी तरह मनमाना मेहमान बनकर आया था। काफी दक्षिणा मिली थी उसको, नक़द पांच हज़ार, सोने के गहने, चाँदी के बरतन। पुलिस आज तक न कुछ कर पाई। उस ओर फाटक के पास तो चौकीदार की कोठरी थी न, उसे यकायक याद आया, दिल धक से हुआ, उसने उधर नजर घुमाई। चांद की हल्की-हल्की रौशनी में उसने देखा कि कोठरी की छत ढह चुकी थी, केवल इधर उधर की दीवारें एक भूत की तरह मुँह बाये खड़ी थीं। उँह, भूतों से डर क्या, भूत अपनी भाई बिरादरी के हैं। वे भगवान की बस्ती से निकाले हुए हैं, हम इन्सानों की दुनिया से। दोनों ही बंजारे हैं, भूत और डाकू।

उसी ओर कुछ घनी झाड़ियाँ भी थीं, उन्हीं के पीछे रेंग-रेंग कर वह सामने की ओर गया। कोई व्यक्ति अपनी टांगें पसारे पड़ा सो रहा था। नौकर होगा। वह दाहिनी ओर मुड़ा। कोई बीस गज लम्बा फ़ासला तय करना था, तब कहीं जाकर वह पिछवाड़े, आँगन में पहुँच पाता। उसने आकाश की ओर देखा। चाँद की किरणें सीधे उसी के मुँह पर आ पड़ीं और उन्होंने उसके फूले हुए गालों को, नोकदार मूँछों को,

नाक के चौड़े-चौड़े नथनों को, सिर की गंजी चँदिया को अपने जाल में कस लिया। उसने झट से एक डुबकी ली और झाड़ियों के पीछे छुप गया।

पत्तों की नक़ाब में से उसने इधर उधर देखा। सामने की दीवार अपनी एक आँख खोलकर उसी को घूर रही थी, एकटक, बिना पलक मारे। उसने फिर डुबकी ली। सन्नाटा···

उसने सिर उठाया, एक आँख बन्द कर, दूसरी खोल, झाँक कर देखा···हा···हा···यह तो झरोखा है। पट खुला था। एक नया विचार बिजली की तरह उसके मन में आया। क्यों न पहले अन्दर घुसकर कुछ रुपया टका बटोर लूं ?

किसी के खखारने की आवाज़, फिर कुछ नींद में डूबा हुआ स्वर, जा······ग···ते···र···ह···ना···आ······आ······आ। चौकीदार की आवाज़ नीम के पत्तों को, झाड़ियों को, मकान के झरोखों को होशियार करती हुई अँधेरे में डूब गई। सन्नाटा छा गया।

उसने साँप की तरह फन उठाकर देखा। दाहिनी ओर नींबू के पेड़ों की क़तारें थीं। उन्हीं की छाया में छुप-छुपकर वह आँगन की ओर बढ़ सकता था। उसने इधर उधर देखा और एक छलाँग में नींबू के पेड़ के नीचे आ पहुँचा। बस, दस क़दम और···।

सुनसान वन के भयानक सर्प के समान रेंगता हुआ, फुफकार मारता हुआ वह नीम के पेड़ के नीचे पहुँच गया। उसने अपने लचकदार अंगों को वृक्ष के तने से सटा कर नज़र दौड़ाई। घर के लोग गहरी नींद में सोये पड़े थे। उसने अपने शिकार को

खोजा। ठीक सामने की दीवार के पास साफ़ सुथरा बिस्तर लगा था। उस पर सोने वाला, वही था जिसकी वह तलाश में था।

वृक्षों की पंक्तियाँ यहाँ पर समाप्त हो गई थीं। सामने आँगन को लाँघकर जाना ख़तरे की बात थी। कुछ मिनट वह अनिश्चित खड़ा रहा, फिर हिम्मत की। दीवार के साए में एक भूत की तरह मँडराता हुआ वह दूसरी ओर पहुँच गया।

यहाँ पर कुछ फूलों की झाड़ियाँ थीं, उसने डुबकी लेकर साँस ली। खंजर उठाया, झाँक कर देखा। कोई सत्रह-अठारह वर्ष का लड़का नींद में डूबा हुआ था। उसका मुँह दूसरी ओर था। एक बाँह तकिये पर पड़ी थी, घुँघराले बाल बिखरे हुए थे। केशों के काले काले घूँघर···बिलकुल वैसे ही जैसे कन्हैया के थे। क़द भी वैसा ही···कमीज़ वैसी ही···। उसकी मुट्ठी ढीली पड़ गई।

लड़के ने करवट ली। चाँद की किरणों ने उस भोले मुखड़े को पकड़कर चूम लिया था। चण्डी का दिल धक से हुआ। वही छवि···खुला हुआ कमीज़ का कालर···लम्बी सी नाक··· घुँघराले बाल, वही अदा। उसके दिल से एक गर्म आह निकली। द्वेश और प्रतिहिंसा की बर्फ़ पिघलने लगी। उसके मन में प्यार का ज्वार उमड़ आया, आँखों में कुहरा सा छा गया।

उसे याद आया, एक दिन रात के समय अँधेरी गलियों से निकल कर वह कजली के घर में छुप गया था, फिर एक दिन उसने ईर्ष्या से पीड़ित होकर ठाकुर बिजय सिंह को कोठे से निकाल दिया था···आह वे दिन कित्ते प्यारे थे। गठकतरी, लट्ठबाज़ी, डाकेज़नी, बंजारों सा भटकना, ये भी क्या कोई ज़िन्दगी है···न घर न द्वार,···आह कन्हैया···डाकू की आँखों में आँसू उमड़ आये।

लड़के ने अपना चेहरा दूसरी ओर झुका लिया था। चण्डी ने क़दम बढ़ाया, झन्न......, एक गिलास नीचे गिर पड़ा। फिर किसी की चीख...चौकीदार ...चोर-चोर की आवाजें। चण्डी छलाँग मार दीवार की ओर भागा। वह दूसरी ओर कूदने ही वाला था कि एक गोली धाँय से उसकी पीठ पर लगी और वह घायल होकर नीचे गिर पड़ा।

शीशे की मेम

सायंकाल का समय था। अँधेरा बढ़ रहा था। कंचन अक्षरों की गहराइयों में डूब गई थी। लैम्प जला लेना चाहिए इसका न तो उसे होश था, न समय ही। कहानी की नायिका दम तोड़ रही थी।

एकाएक बाहर किसी ने पुकारा, भोलू...डल्ला...बेला...।" कंचन चौंक पड़ी। लो! यह तो कुमार हैं। यह कहाँ से टपक पड़े। इन्होंने तो कहा था कि तीस को आऊँगा। आज है पच्चीस। हाँ, वही तो हैं, उसने चिक के अन्दर से झाँक कर देखा। भोलू तांगे से सामान उतार रहा था और उसके मालिक रेज़गारी गिन रहे थे।

कंचन का दिल धक से रह गया। पति के लौटने की खुशी, कोशिश करने पर भी न हो सकी। अब कहानी कभी समाप्त न होगी। इधर एक सप्ताह बड़ी चैन से गुज़रा था। भोलू दिन भर चुरुट पिया करता था, बेला पैर फैलाये रेडियो सुनती और डल्लू तो खूब रंग में था। रात को सिनेमा देखता और दिन भर फ़िल्मी गीत गाकर किसी को सुनाया करता था। इन तीनों को कोई कहने सुनने वाला न था। मालिक कलकत्ते गए थे और मालकिन कहानी लिख रही थीं।

गरज़ कि कुछ काम न हुआ था, चीजें उल्टी-सीधी पड़ी थीं। खिड़की के ऊपर जाला लटक रहा था, तख्त पर किताबों का ढेर था। उफ़ ओ, आज तो कमरों में झाड़ू भी न दी गई थी। उसने डल्ला से कह दिया था कि तम्बाकू का दम लगाकर सफ़ाई कर देना। फिर वह भूल गई। यह लो, पीतल का फूलदान तो वैसा ही पड़ा है। कुमार ने ख़ासतौर से कहा था कि साफ़ करके रखना। अब क्या करूँ!

ख़ैर, सोचने का समय न था। क़लम और कापी को गद्दे के नीचे छुपाया, किताब मेज़ पर रक्खी, मेज़पोश की शिकन को साफ़ किया, दर्पण पर पड़े हुए पाउडर के ज़र्रे को आंचल से पोंछा, और...और दीवार पर टँगी हुई तस्वीर की नोक को सीधा किया, फूलदान को अलमारी की आड़ में छुपाया, झाड़न को कन्धे पर डाला और हाथ में झाड़ू उठाई ही थी कि कुमार ने कमरे में प्रवेश किया।

सफ़र का सामान खोला गया। कुमार सबके लिए कुछ न कुछ उपहार लाया था। चुन्नी के लिए गुड़िया, कंचन के लिये पेन, डल्ला के लिए निकर, भोलू के लिये हवाई जहाज के छापे वाली कमीज़ और बेला के लिये चूड़ियाँ। कंचन की नज़र एकाएक लकड़ी की पेटी पर पड़ी। उसने रस्सी खोलने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि कुमार चिल्ला पड़ा, "अरे...रे...रे छूना मत, वरना ग़ज़ब हो जायगा।"

"क्यों, क्या है ?

कुमार केवल मुस्कुरा पड़ा।

"आख़िर है क्या, कुछ तो कहो, उँह, मेरी बला से...अजी सुनते हो...मैं क्या बक रही हूँ...अच्छा न बोलो...मैं अभी...

"अरे…रे…रे…छूना नहीं, भाई !"

"क्यों जनाब, क्या मैं छू भी नहीं सकती…आखिर बताओ भी न……उँह !"

"शीशे की परी है, छू लोगी तो उड़ जायगी।"

परी का नाम सुनते ही घर भर में शोर मच गया। सब नौकर काम छोड़ कर चले आये, मजबूर होकर पेटी खोलनी ही पड़ी। कंचन की आँखों में उत्सुकता थी, चुन्नी के चेहरे पर खुशी और डर, भोलू के दाँतों में चमक, डल्लू की आँखों में आश्चर्य और बेला के होठों पर व्यंङ्ग्य-भरी मुस्कुराहट।

कुमार ने रुई के गुच्छे निकाल कर बाहर फेंक दिये और नीले रंग की साटन को सट से सरका कर खोला। सब के सब आगे झुक गये। डल्लू का सिर भोलू से, भोलू का सिर कंचन से और बेला का सिर कुमार से जा टकराया।

रेशम की सरकती हुई सिलवटों में से शीशे की मेम निकल आई। कुमार ने बिजली का बटन दबाया। मेम के अंग-अंग से रौशनी फूटकर कमरे को आलोकित करने लगी। अजीब नज़ारा था। सब के मन में आनन्द की लहर दौड़ पड़ी। कंचन खुश थी, कुमार के लौट आने का ग़म भूल गई थी। डल्लू एक कवि की तरह गम्भीर था और भोलू की आँखें शीशे की रंगीन गोलियों की तरह धक्-धक् चमक रही थीं।

अब समस्या यह थी कि शीशे की मेम को किस कोने में स्थापित किया जाय। ऐंगल बिल्कुल सीधा न हो, कुछ तिरछा सा हो। सीधी चाल तो सभी चलते हैं, उसमें कौन खूबी है।

जिन्दगी का लुत्फ़ तो है तिरछा-टेढ़ा चलने में, शतरंज की बाजी में फ़ीले की तरह।

हाँ, द्वार के सामने वह कोना ठीक है ताकि आगन्तुक की नज़र तुरन्त उसी पर पड़े और वह दंग होकर, "वाह, वाह," कर उठे। उस कोने में एक मेज़ पर कंचन की तस्वीर रखी हुई थी। उसको वहाँ से उठा दिया गया। गृह-लक्ष्मी के सिंहासन पर अब अमेरिका की बनी हुई शीशे की मेम विराजमान हो गई। कंचन की तस्वीर कभी इस मेज़ से स्टूल पर, स्टूल से कुर्सी पर, कुर्सी से ट्रंक पर, ट्रंक से ज़मीन पर भटकने लगी। फिर एक दिन अपनी लाज को बटोर कर गोदाम में जा छुपी। लोग उसको धीरे-धीरे भूल गये। कंचन को भी उसकी याद न रही।

कुमार और कंचन, एक गृहस्थी के दो रूप हैं, किन्तु दोनों के स्वभाव में आकाश पाताल का अन्तर है। एक को सादगी पसन्द है तो दूसरे को ठाठ-बाट। एक को सौन्दर्य से प्रेम है, दूसरे को शतरंज और ताश से। एक साहित्यकार है, दूसरे को साहित्य से चिढ़ है। मगर दोनों में बनती खूब है। क्यों न बने, ताने-तिश्नों का, फ़िकरेबाज़ी का, नोंक-झोंक का बार-बार अवसर मिलता है। संघर्ष ही जीवन का आनन्द है। मनुष्य प्रेम से शीघ्र ही ऊब जाता है। दुनिया में एक चीज़ है जो कभी बासी नहीं होती, जो खून को हमेशा गर्म रखती है। वह है तनातनी······कशमकश।

बेला उनकी नौकरानी है, कई वर्षों की पुरानी। शक्ल देखने के लायक़ है, खूब मोटी, रंग काला, गाल फूले हुए, बालों में फूल और चिड़ियाँ,आँखें सितारों की तरह नन्हीं-नन्हीं और चमकदार।

रंगीन धोती पहनती है और झालरदार कमीज़। काली गोल कलाइयों में रंग बिरंगी चूड़ियाँ खनखनाया करती हैं। बड़ी शौक़ीन है।

इस घर में अगर किसी का रोब है तो बेला का। निराली औरत है। कोई ऐसी वैसी नहीं। दस साल जेल में रह चुकी है। अपने इष्टदेव को गँडासे से मारने की कोशिश की थी, "मुआ बच गया, बड़ा ढीठ है," वह हँसकर कहा करती है। उसकी हँसी भी अजीब है, व्यङ्ग्य से भरी हुई, ऐसा भाव लिये हुए कि यह सब क्या है, अजब तमाशा है, वाह, वाह। हुक्म देने वाला मालिक कुछ हक्का बक्का सा रह जाता है, और वह ठट्ठा मार कर हँस पड़ती है। हँसने पर उसके गाल गोल-गोल उभर आते हैं, दाँतों की क़तार खुशी से थिरकती है और आँखें दो झँझरियों की तरह झिपझिप चमक उठती हैं।

डल्ला भी बड़ा दिलचस्प नौजवान है। क़द छोटा, छाती चौड़ी, चेहरा गोल, बाल उलझे हुए, अंग-अंग से मस्ती फूट रही है। बड़ा रोमैन्टिक है। राधिका पनवाड़िन की लड़की श्याम-कली पर जी जान से लट्टू है। भोलू तो अभी लड़का है। डल्लू का शिष्य है। प्रेम के मामलों में अभी शिक्षा ले रहा है। चुन्नी सात बरस की नन्हीं सी बच्ची है लेकिन बड़ी ही बला है। गीत खूब गाया करती है। सिर पर घूंघट डालकर वह मटकती है कि नजर न लगे। ईश्वर उसे बड़ी उम्र दे। यह है इनका परिवार, छोटा और खुशहाल।

हाँ, तो कुमार प्रसन्न था। घर में भी खूब चहल पहल थी। एक दिन अचानक कुमार कहने लगा, "चलो, इस बार दावत कर दी जाये। बात यह है कि डिप्टी कमिश्नर साहब की पत्नी

शीशे की मेम देखना चाहती हैं। उनको बुलाना जरूरी है, साथ ही और कुछ मित्रों को भी बुला लेंगे।"

"हाँ, हाँ, जरूर, तुम्हारे कमिश्नर साहब की पत्नी तो ऐसी मिजाजदार हैं कि बस समझती हैं दुनिया में एक मैं हूँ और मेरा घर। मैं इनका घमण्ड चूर-चूर कर दूँगी और मिसेज़ चन्द्रदेव, ऊँह, उन्हें क्या तमीज़। उनका गोल कमरा तो कबाड़-खाना है। और सुनो, मिसेज़ शेख़ को भी जरूर बुलाना। उनका सिटिंग-रूम देखा है न, बिसाती की दूकान है। क्या-क्या टेस्ट हैं। भई वाह।"

पार्टी का दिन आ गया। गोल कमरे और डाइनिंग-रूम की फिर से सफ़ाई शुरू हो गई। कुमार को सफ़ाई का मर्ज़ है। मेज़ साफ़ हो, चादर सफ़ेद हो, पीतल के फूलदान पर पालिश होना जरूरी है। दिल की सफ़ाई किसने देखी है।

घर में खूब हलचल मची थी। गोलकमरे की कुर्सियां उल्टी सीधी पड़ी थीं। कुमार को कोई सजावट पसन्द ही न आती थी। डल्ला और भोलू कुर्सियों को इधर-उधर रख रहे थे। चुन्नी चाँदी के चम्मच को पालिश से चमका रही थी। और बेला बीबी सबकी चौधराइन बनी हुई, क्या खानसामा, क्या डल्ला, क्या मालिक, क्या मालकिन सबको डाँट फटकार रही थी।

गोल-कमरा सज गया। परदे झूलने लगे। गुलदान में फूल मुस्कुरा पड़े। इधर खाने की मेज़ पर सफ़ेद चादर बिछा दी गई थी। बीच में पतली कमर वाले गुलाबी रंग के फूलदार गिलास उलटकर चुने हुए थे। वाह वाह! क्या नज़ारा था। कंचन मुस्कुराई। ऐसा लग रहा था जैसे बारह अँग्रेज लड़कियाँ घेरदार फ्रॉक पहिने हुए नाचने के लिए तैयार हैं। प्लेटों पर

आसमानी रंग के नैपकिन सजे हुए थे। नहीं जी, नैपकिन नहीं, बारह बैन्ड मास्टर, आसमानी वर्दी में, सिर में तुर्रा लगाये, हाथों में छुरी कांटो के साज लिये हुए। टन टनन टन, टन टनन टन, नर्त्तकियाँ एक साथ पैर उठाकर गुनगुनाने लगीं, लचकने लगीं, गोल-गोल घूमने लगीं।

एकाएक गुसलखाने से आवाज आई। कुमार चिल्ला रहा था, "बेला, कंचन, कंचन, बेला, अरे सुनो, गजब हो गया। जल्दी करो भाई, मेम साहब की सफ़ाई तो कर डालो, और हाँ, उस पर आसमानी रंग का कपड़ा डाल देना। कोई देखने न पाये, समझी।"

बेला ने न सुनकर भी सुन लिया और कंचन ने सुनकर भी सुना नहीं। वह आराम कुर्सी पर आकर बैठ गई। उठने की शक्ति न थी। शरीर में थकान थी, कमर में दर्द था, रग-रग दुख रही थी। मन अलग परेशान था। कहानी अभी तक समाप्त न हुई थी और उसके दिमाग की गलियों में कहानी के पात्र अनाथ बच्चों की तरह इधर उधर भटक रहे थे। जब से यह शीशे की मेम साहब घर में तशरीफ़ लाई हैं, एक मिनट की फ़ुरसत नहीं मिली है। सफ़ाई सुथराई, सजावट-बनावट, शोर गुल। उफ़! नाक में दम है। नहीं, आज रात को वह अपनी कहानी समाप्त करके ही रहेगी। चूल्हे में जाय शीशे की मेम।

आठ बज गये और मेहमानों ने आना शुरू किया। शराब की बोतलें जनाजन उड़ने लगीं। बड़े-बड़े शानदार लोग थे, मिस्टर सुन्दरलाल, मिस्टर शेख, मिस्टर चन्द्रदेव, उनकी धर्म-पत्नियाँ इत्यादि। यह अमरीकी मेम का प्रताप है।

गोल-कमरे की शान निराली थी। सबकी आँखें चकाचौंध

हो रही थीं। लेकिन जिस चीज़ की चर्चा सब लोग सुन चुके थे, वह कहीं पर नज़र न आई। विशेषकर औरतें अत्यन्त उत्सुक थीं। धीरे-धीरे शराब के नशे के साथ-साथ जब उनकी उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँच गई तो नाटक का अन्तिम दृश्य शुरु हुआ। सब लोग मेज के चारों ओर खड़े हो गये। कुमार ने प्लग लगाया, रौशनी फूट पड़ी। आसमानी रेशम लहरों की तरह झिलमिलाने लगा। कुमार ने धीरे-धीरे यवनिका उठानी शुरू की। सबके सब हड़बड़ाकर आगे झुक गये। मिस्टर शेख़ का गिलास झज्ञ से गिरकर फूट गया, श्रीमती शेख़ की ठोकर खाकर गुलदान जमीन पर गिर पड़ा और श्रीमती सुन्दरलाल मिस्टर चन्द्रदेव की कोहनी से टकराकर मोतियों की टूटी हुई माला की तरह मिस्टर सूर्यकान्त की मजबूत छाती पर बिखर गईं।

साटन की सिलवटें सरकने लगीं। कमरे में निराशा सी छा गई। मेम का सिर लुढ़क कर नीचे गिर पड़ा था। सब के चेहरों पर रंज था। ऐसा मालूम हो रहा था जैसे किसी की प्रेमिका चल बसी हो। कंचन और कुमार व्यथित हो उठे। इतने ही में बेला ने सिगरेट का डिब्बा लेकर भीतर प्रवेश किया। ओहो, ये सब इसी की शरारत है। मालिक और मालकिन ने आँखें तरेर कर उसकी ओर देखा। वह मुस्कुरा पड़ी और सफ़ाई देते हुए बोली, "अय रानी साहब, मेम साहब की नाक कान माँ, मार माटी भरी रहै। हम कहिन यहुका साफ कर देई।"

उफ़! किस कदर ढीठ और बेशरम औरत है। कंचन गुस्से के मारे थरथराने लगी। वह आपे से बाहर हो गई। उसके मन में आया, इस औरत का झोंटा नोच ले और ठोकर मार कर घर से बाहर निकाल दे। उसने अपनी मुट्ठियाँ उठाई ही थीं कि वह

काली कलूटी औरत अपने सफ़ेद-सफ़ेद दाँत निकाल कर हँस पड़ी, बोली, "अय, तो का भवा रानी साहब, ससुरी सीसै की तौ रहै ऊ मेम साहब, का कौनौ सचमुच की थोरौ रहै, बजार माँ ढेरन मिलिहैं, झउआ भर। हाँ, और का।"

न जाने उसकी बात में क्या जादू था। कंचन की दोनों मुट्ठियाँ उसके सिर पर नहीं, शीशे की मेम पर जा पड़ीं और वह मेज समेत नीचे गिर कर चकनाचूर हो गई। गोल कमरे में सन्नाटा छा गया। कुछ पल के बाद कोई हँस पड़ा, फिर मिस्टर शेख, फिर मिस्टर सुरेन्द्र, फिर उनकी पत्नी। कुमार और कंचन ने एक दूसरे की ओर देखा फिर उन्हें ख़ुद ही अपनी मूर्खता पर हँसी आ गई। इसके बाद कमरे में जितने भी लोग थे वे सब अपनी-अपनी बेवकूफ़ी की बातों को याद करके खिलखिलाकर हँस पड़े और लोट-पोट हो गये।

मास्टर जी

मास्टर तुलसीराम ने मानचित्र की ओर देखा। अक्षरों की पंक्तियाँ नन्हीं-नन्हीं चीटियों के समान रेंग रही थीं। आँखों पर जोर डालने के कारण उनका सिर चकराने लगा। एकाएक उन्हें याद आया कि उनकी नाक पर ऐनक नहीं है। तभी तो लड़कों के चेहरे पहचाने नहीं जा रहे। लगा जैसे कक्षा में प्रेतों की परछाइयाँ फिर रही हों। ओहो, मैं भी कैसा मूर्ख हूँ। और वह अपनी मूर्खता पर मुस्करा पड़े।

मास्टर साहब ने जेब में हाथ डालकर डिब्बा निकाला, उसे खोला, टटोला। फिर याद आया, अरे, ऐनक तो उस दिन टूट गई थी, जिस दिन इन्सपेक्टर साहब आये थे। हेडमास्टर साहब ने कड़क कर कुछ पूछा था, उनका हाथ काँप गया था, ऐनक नीचे गिर पड़ी थी और इन्सपेक्टर साहब के जूतों के नीचे दब कर चकनाचूर हो गई थी।

"ही...ही...ही...मैं तो भूल ही गया था कि ऐनक टूट गई है...खैर बच्चो, कोई बात नहीं। बस लखनऊ यहीं कहीं है। पंचवर्षीय योजना के अनुसार..." मास्टर साहब अपने अन्दाज से रूलर के द्वारा लखनऊ का स्थान दिखाते हुए बोले।

परछाइयाँ मुँह दबा कर हँस पड़ीं।

"अजी मास्टर साहब, यह लखनऊ नहीं, यह तो पेरिस है। यह उत्तर प्रदेश नहीं, योरप का मानचित्र है," मंगला की छाया बोल उठी।

"मैंने तो कहा था, अपने प्रान्त का मानचित्र लाओ, तुम योरप का क्यों ले आए?"

"मास्टर साहब, वह चित्र तो पहले ही फट चुका है, जो कुछ बचा था उसे कल बन्दरों की फौज उठाकर ले गई। मैंने भी सोचा, उत्तर प्रदेश का न सही, योरप का ही सही, चित्र तो है", मंगला ने लापरवाही से कहा।

"देखो, मंगला, तुम बहुत दुष्ट होते जा रहे हो, हाँ। माना तुम क्लास में सबसे अव्वल हो, पर इसके यह मतलब नहीं कि तुम्हारा दिमाग आसमान पर चढ़ जाये। अच्छा, ख़ैर, मान लो यह है उत्तर प्रदेश का मानचित्र···हुँ···यहीं कहीं है लखनऊ", मास्टर साहब ने शून्य में रूलर से उत्तर प्रदेश का नक्शा खींचते हुए कहा, "हाँ, तो पंचवर्षीय योजना के अनुसार·········।"

"मास्टर जी।"

"माट्टर जी।"

"मटर जी।"

"टमाटर जी।"

एक के बाद दूसरी छाया बोल उठी।

"मास्टर साहब, एक बात बता दीजिए। बस, एक बात। नये पंचवर्षीय योजना में हमें मटर टमाटर खाने को मिलेंगे ?"

"ओहो, अब तुम लोग सब चुप रहो, बच्चों···मैं किसी के प्रश्न···श···हैडमास्टर साहब ने सुन लिया तो······" मास्टर साहब मेज पर रूलर खटखटाकर बोले।

"अजी, हैडमास्टर साहब गए हैं, इन्सपेक्टर साहब के घर काम-काज करने···जी हुजूरी करने···अरे नहीं···नहीं···श्रमदान करने···ही···ही···मास्टर जी, मै भूल गया। क्षमा कीजिएगा," मंगला बोला।

"देखो मंगला, तुम बहुत नॉटी हो गये हो। हैडमास्टर साहब के बारे में ऐसी बात कहने लगे हो। कल को तुम मेरे बारे में यह कहोगे ?"

"नहीं मास्टर जी, भला, मैं ऐसी गुस्ताखी कर सकता हूँ! हैडमास्टर साहब की बात कुछ और है।"

"क्यों और बात है ? क्या वह तुम्हारे बड़े नहीं ? आगे से ऐसा न करना, समझे ?"

"जी, मास्टर साहब," मंगला ने कहा, किन्तु सिर को नहीं रूप में हिलाया, क्योंकि वह जानता है कि मास्टर साहब सुन सकते हैं पर देख नहीं सकते।

"हाँ, तो मैं पंचवर्षीय योजना के बारे में बता रहा था। इसके अनुसार हमारे प्रान्त में नये-नये स्कूल खुलेंगे, जहाँ पर······।"

"अच्छा, मास्टर साहब, जरा यह भी बताने की कृपा

कीजिएगा कि स्कूल असली होंगे या नकली ?" मंगला ने पूछा।

इस पर सब लड़के हँस पड़े।

"कैसी बात करते हो, भला कभी स्कूल भी नकली हुआ है ?"

"क्यों नहीं मास्टर जी ? पंचवर्षीय योजना की गाय भैंसें नकली दूध दे रही हैं कि नहीं ? यह दूध है या शीतल गंगा जल, घी है या मिट्टी का तेल। योजना की मशीनें सूत या रेशम नहीं, मकड़ी के जाले बुना करती हैं, हाथ लगाया नहीं कि कपड़ा चिर्र से फट गया, जो टरैक्टर हैं वह क्या असली गेहूँ पैदा कर रहे हैं, आधा तो उसमें कंकड़ भरा होता है.........।"

"और क्या।"

"बिल्कुल ठीक।"

"शाबाश मंगला।"

एक साथ कई लड़के बोल उठें।

"और मास्टर साहब, यह स्कूल भी तो नकली है। न हमारे पास गेंद-बल्ला है, न पुस्तकालय है। अजी, और तो और, इस प्रान्त का मानचित्र तक नहीं है। गरीब लड़कों के पास किताबें नहीं हैं।"

"अब तो सुना है कापी पर भी टैक्स लगने वाला है," बीना की छाया बोल उठी।

"अजी कापी किताब क्या, आपकी नाक पर भी टैक्स लगेगा", मंगला बोला।

"मास्टर जी, टैक्स देने के लिए हम तैयार हैं, लेकिन जो हम दें उससे मास्टर लोगों को एक-एक ऐनक खरीद कर दे दी जाये," भोलू बोल उठा।

"अजी, ऐनक नहीं, उससे खरीदी जायेंगी बड़ी-बड़ी मोटरें, जिन पर हमारे मंत्री जी के रिश्तेदार सैर-सपाटे करेंगे," मंगला बोल उठा।

"मंगला, तुम बहुत दुष्ट हो गए हो। भला यह भी कोई बात है। और सबसे बुरी बात यह है कि तुम कक्षा के अन्य विद्यार्थियों को भी बिगाड़ रहे हो," मास्टर तुलसीराम ने क्रुद्ध होकर कहा।

घंटी बज उठी और मास्टर साहब इस प्रकार रूठ कर चल दिये जैसे नई-नवेली दुलहन की तकरार से घबराकर बूढ़ा पति।

इधर कुछ दिनों से यह मंगला की ओर से बड़े चिन्तित हैं। वह उनका सबसे प्यारा शिष्य है। अब न जाने क्यों इतना गुस्ताख हो गया है। पिछले वर्ष की परीक्षा में प्रथम आया है न, इसलिये। इसको बड़ा घमंड है···ओहो, यह किसने छिलका फेंक दिया। पैर फिसलते-फिसलते रह गया। अभी टाँग टूट जाती। आग लगे इन आँखों को, कुछ सूझता भी तो नहीं।

मास्टर बाबू सम्हल गये। उनका ध्यान फिर मंगला की ओर गया। उस दिन गली में किसी पार्टी के लड़के आये थे, उन्होंने ही यह बेतुके विचार उसके मस्तिष्क में भर दिए हैं। इन्क़लाब के नारे लगाने लगा है। मिनिस्टर मोटर पर चढ़ें या हवाई जहाज़ पर, तुमको इससे मतलब। अबके फ़ेल होगा। हुँ, मुझे क्या। वह चिन्तित हो उठे। उनका पैर लड़खड़ाया,

लाठी हाथ से गिर पड़ी। ओहो, बड़ा बचाव हो गया।

एक साइकिल इधर से, एक लारी उधर से, जन्न से निकल गई। मास्टर बाबू बाल-बाल बचे। किसी प्रकार राम-राम करके वह सड़क के पार पहुँचे। वहीं गली के नुक्कड़ पर उनका मकान था। स्कूल से दूर नहीं, बस उस पार, किन्तु इसी सड़क को लाँघ कर जाना उनके लिये मुसीबत थी। कभी-कभी तो वह सड़क नौका सी बन कर डगमगाने लगती और उन्हें अनुभव सा होता, वह डूब रहे हैं···डूब रहे हैं···

गली के मोड़ पर मास्टर बाबू का छोटा सा मकान था, एक कोठरी और आँगन। वहीं एक कोने में स्नानागार था जिस पर टाट के परदे पड़े हुए थे। पर्दे भी बस नाम को ही थे क्योंकि उनमें बड़े-बड़े छेद थे और लगातार पानी में भीगने के कारण नीचे से तो बिल्कुल गल गए थे।

घर में बच्चे ऊधम मचा रहे थे। मास्टर साहब के साथ उनकी विधवा कन्या रूपा और उसके दो बच्चे रहते हैं, एक तीन वर्ष की कन्या लक्ष्मी और पाँच वर्ष का बालक विष्णु।

रूपा रसोई में नाश्ता बना रही थी। आँगन के एक कोने में ही चूल्हा बना दिया गया था। लकड़ी के पटरे पर दो-चार बर्तन, थाली, गिलास, और कटोरे रक्खे थे। पिता को देख कर वह उनके लिए नाश्ता ले आई। लक्ष्मी और विष्णु भी उस पर टूट पड़े। नाश्ता करने के पश्चात् वह चारपाई पर लेट कर पंखा झलने लगे। चारपाई क्या थी, झोला सा था, बीच में से बान टूट गया था। मास्टर बाबू राजा इन्द्र के झूले में झूल कर ऊँघने लगे।

एकाएक वह नींद में चौंक पड़े और हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए। उन्हें याद आया कि, ओहो, परसों जो मासिक परीक्षा हुई थी उसकी चालीस कापियाँ पड़ी हैं और उनके नम्बर कल हैडमास्टर साहब को देने हैं। मास्टर बाबू व्याकुल हो गठे और कापियों का बन्डल जाँचने के लिए राजा इन्द्र की सभा से सर तोड़ कर भागे और अपने टूटे-फूटे घर में लौट आये।

वह कोठरी के अन्दर पहुँचे और अलमारी खोली। यह अलमारी भी एक छोटी सी दुनिया थी जिसमें दीमकों ने अपनी बस्ती बना रक्खी थी। नए-नए शहर बन रहे थे। सत-मंजिले महल, सुरंगें, बाँध, पुल, सड़कें, फाटक बनते जा रहे थे। बड़ी ही हलचल थी। दीमकों की इस अनोखी दुनिया में पंचवर्षीय योजना का काम बड़ी ही तेजी और फुर्ती से फटाफट हो रहा था।

मास्टर बाबू ने अलमारी में से कापियाँ निकालीं और झाड़-पोंछ कर उन्हें जाँचना शुरू किया। एक कापी खोली तो लगा जैसे कागज पर स्याही की बोतल लुढ़क गई है। दूसरी कापी का पन्ना उल्टा तो लगा जैसे स्याही के तालाब में नन्हीं-नन्हीं मछलियाँ गोल-गोल तैर रही हैं। तीसरी कापी जो उठाई तो अक्षरों की बाँबियों में से नन्हें-नन्हें कीड़े मकौड़े-निकल कर मास्टर बाबू के चारों ओर रेंगने लगे। वह व्याकुल हो उठे।

"अरे रे···रे··· ऐनक नहीं है आँखों पर, तभी तो मैं भी कहूँ यह कीड़े-मकौड़े कैसे।" मास्टर बाबू को अचानक याद आया।

ऐनक लेने के लिए उन्होंने अपनी जेब में हाथ डाला, डिब्बा निकाला और खोला। "अरे ऐनक तो उसी दिन टूट गई थी,

इन्सपेक्टर साहब के जूते के नीचे दब कर······मैं भी कैसा भुलक्कड़ हूँ, ही···ही···ही···" और उन्हें अपनी भूल पर हँसी आ गई।

किन्तु यह हँसी उसी पल बुझ गई। नई ऐनक बनवाने की समस्या भयानक रूप धर कर उनके चारों ओर मँडराने लगी। कम से कम पाँच दस रुपये का खर्चा तो होगा ही। अस्पताल जाने के लिए बस का किराया, दवा-दारू, ऐनक की बनवाई, शायद ऑपरेशन करवाना पड़े। अभी महीने के दस दिन बाकी हैं और रुपये सब समाप्त हो चुके हैं। लड़की का बोझा भी तो सिर पर आ पड़ा है। हाय, रूपा! उनके हृदय में एक हूक सी उठी।

वह अपनी बात भूल गए और अपनी बेटी के विषय में सोचने लगे। अपने घर में बड़े सुख से रह रही थी। छोटी सी गृहस्थी थी। दो वर्ष हुए विधवा हो गई। अभी उसकी आयु ही क्या है, तीस वर्ष भी तो नहीं, और दो बच्चे हैं। हाय, क्या होगा इन सबका और मेरे जीवन का भी क्या भरोसा।

मास्टर बाबू की आँखों से दो आँसू निकल कर उनके पिचके हुए गालों पर ढुलक गए।

वार्षिक परीक्षा समाप्त हो गई। परीक्षा-फल निकल आया। सबने आश्चर्य से सुना कि मंगला फ़ेल हो गया है। उसने बेईमानी की थी। उस दिन हिन्दी के पर्चे में वह पुस्तक के पन्ने छिपाये बेखटके नक़ल कर रहा था, यद्यपि मास्टर तुलसीराम उसके सामने ही बैठे हुए थे। वह जानता है कि मास्टर साहब की ऐनक टूट चुकी है। आस पास के लड़के भी चुप रहे क्योंकि

उन्हें भी थोड़ी सी रिश्वत मिल गई थी। मंगला शैतान जरूर है पर कंजूस नहीं। अपनी विद्या का कोष दोनों हाथों से लुटाया करता है। पिछली मासिक परीक्षा में उसकी कापी से लगभग सारे लड़कों ने नक़ल की थी। सब लड़के एक साथ फ़ेल हुए क्योंकि मंगला का उत्तर ही ग़लत था।

हाँ, तो मंगला बड़े मज़े में मास्टर बाबू की आँखों के सामने बैठा हुआ नक़ल कर रहा था कि अचानक पीछे से, चोर की तरह चुपके-चुपके हैडमास्टर साहब पहुँच गए। मंगला को रत्ती भर शक नहीं और उसे होश तब आया जब पीठ पर ज़ोर से रूलर पड़ा। वह तिलमिला गया।

मंगला से भी अधिक रंज था मास्टर तुलसीराम को। शर्म के मारे उनकी गर्दन नीची हो गई। उन्हें लगा जैसे वह चोरी उन्होंने ही की थी। यह सब उन्हीं का दोष है। यदि उन्होंने ऐनक बनवा ली होती तो यह सब कुछ न होता। रुपये नहीं थे तो कर्ज़ लिया जा सकता था। विद्यार्थियों में इतना साहस कि मास्टर की नाक के नीचे यह सब करें। अरे, वे जानते हैं कि मास्टर बाबू को सूझता ही नहीं। पढ़ाया भी ठीक से नहीं। लिखने का काम तो उस दिन से हुआ ही नहीं जब से ऐनक टूटी। एक-आध मासिक परीक्षा हुई थी, पर उसकी कापियाँ दूसरे मास्टर ने जाँच दी थीं।

मंगला के भाई ने सुना तो दौड़ा हुआ आया। किसी मिल में नौकर था। बड़ी कठिनाई से भाई को पढ़ा रहा था। चाहता था कि मंगला दशम कक्षा पास कर ले तो सरकारी दफ़्तर में चपरासी बनवा दे। मास्टर साहब के हाथ पैर जोड़ने लगा कि इस बार माफ़ी दी जाय। वैसे मङ्गला सब विषयों में अव्वल है।

"मैं कुछ नहीं जानता, हैडमास्टर साहब जाने। तुम्हारा भाई बहुत उदण्ड हो गया है, हाँ," मास्टर बाबू ने गाल फुलाकर कहा।

मङ्गला के भाई ने जब देखा कि मास्टर साहब की ऐनक टूट गई है तो उसको बहुत रंज हुआ।

"अरे मास्टर साहब, पहिले काहे न बतायो हमसे। चलौ, हमहै बनवाय देई। बड़ी दिक्कत होति होई आपका ?"

मास्टर साहब ने उस समय तो बात टाल दी किन्तु उनकी आँखों के सामने ऐनक का सुनहरा सपना चमकने लगा। केवल उसकी आशा से ही उनको कुछ-कुछ दिखाई देने लगा। हाथ-पैर में फुर्ती आ गई।

उन्हें कुछ संकोच हुआ। क्या यह रिशवत नहीं ? क्या मैं कान्सटेबुल हूँ, सी० आई० डी० हूँ, एम० एल० ए० हूँ, दफ्तर का चपरासी हूँ कि रिश्वत लिया करूँ ? और यदि स्कूल के अध्यापक भी यह काम करने लगें तो समाज कहाँ जायगा ? लड़के क्या सीखेंगे ?

उन्होंने अपनी कल्पना में देखा कि यही मंगला, सन्तू, बीना और चन्दू बड़े हो गये हैं, दफ्तरों में काम कर रहे हैं, कोई बाबू है, कोई चपरासी, कोई सिपाही है और कोई पटवारी। सब के सब दोनों हाथों से घूस ले रहे हैं। मंगला पकड़ा गया, बीना को रिश्वत में हिस्सा न मिला तो उसने अफ़सर से शिकायत कर दी। मंगला को दो साल की जेल हुई। उसकी भोली-भोली, आँसू-भरी आँखें कटघरे से उनको झाँक कर कह रही थीं, "यह सब आपने ही किया है मास्टर बाबू, मुझे बचाओ........."

उनकी आँखों में फिर से अंधेरा छा गया। हाथ-पैर सुस्त पड़ गए। बार-बार लड़खड़ाकर गिरने पड़ने लगे। उनके जीवन का अंधकार जितना घना होता उतना ही स्वप्न साफ़-साफ़ चमकने लगता। रात के सितारे ऐनक बन-बन कर उनके चारों ओर नाचने लगे।

उँह, होगा। देखा जायगा और फिर, यह तो गुरु-दक्षिणा है। रिश्वत थोड़ा ही है।

मास्टर साहब ने हैडमास्टर को समझा बुझाकर राजी कर लिया। वैसे मंगला अन्य सब विषयों में अव्वल था। हिन्दी के दूसरे पर्चे में उसको गोल अंडा मिला था, किन्तु उसका प्रथम पर्चा पूर्णतया सही था और दोनों पर्चों को मिला कर वह उत्तीर्ण था।

खैर, मंगला के दोनों कान मरोड़ कर, गालों पर चार-चार चपत लगा कर, पीठ पर दो रूलर जमा कर, हैडमास्टर साहब ने मंगला को दर्जा दे दिया।

मंगला ने मास्टर बाबू के पैर पकड़ लिए, फूट-फूट कर रोने लगा। उनकी आँखों में भी आँसू छलक आये। मन में प्यार की बाढ़ उमड़ आई। जग्गन अपनी चिलम फेंक दौड़ा हुआ आया, सौ बार उनका गुण-गान किया किन्तु जब उसने अपने वायदे के अनुसार ऐनक के लिए दस रुपये उनके चरणों पर रख दिए तो मास्टर बाबू आग बबूला हो गए। रुपये फेंक दिये। मुँह फुला कर बोले,

"तुम क्या समझते हो, हम कोई क्या पुलिस वाले हैं जो रिश्वत लिया करें। ख़बरदार, जो फिर कभी ऐसा किया। हम रुष्ट हो जायेंगे, हाँ। और अब तो कुछ-कुछ दिखने लगा है।

भगवान अच्छी करनी का फल तुरन्त देता है। अब मैं तुमको स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ। हाँ, नाक नजर नहीं आती···पर···तुम हरी पगड़ी पहिने हो कि नहीं···और मंगला की कमीज नीली है कि नहीं·········।"

"नीली नाहीं मास्टर बाबू, सुफेद है," जग्गन हँसते हुए बोला।

"अरे, एक ही बात है, नीली हो या सफेद। संसार में एक वही रंग है, जो उसमें रंग गया वह तर गया। यह भेद भाव सब झूठा है।"

"ही···ही···ही···आपौ तो बहुत गियानी-मानी हैं", जग्गन खुशामद के स्वर में बोला।

मास्टर बाबू को लगा जैसे सचमुच उन्हें कुछ सूझने लगा है। उन्होंने अपनी छड़ी उठाई और घर की ओर चले। खुशी के मारे उनके पैर हवा में उड़ने लगे।

यह देखो वह है ननकू की दूकान···वह है उसका बेटा··· कुछ तोल रहा है···और वह उधर से आ रही है टनन···टनन साइकिल···कुछ-कुछ तो दिखने लगा···सब भगवान की कृपा है·········" सोचते हुए मास्टर बाबू सीना तान कर सड़क पार करने लगे।

"नाना जी···मिठाई···नाना जी···" विष्णु नाना को दूर से देख कर चिल्लाया। वह हलवाई की दुकान के पास खड़ा हुआ मचल रहा था। रूपा उसको बहलाने का यत्न कर रही थी। इतने में ही उसने नाना को देखा। अब उसे कुछ आशा हुई।

माँ का अंचल छोड़ कर वह नाना की ओर लपक कर बढ़ा।

मास्टर तुलसीराम के मन में प्यार की बढ़िया उमड़ आई। कैसा प्यारा-प्यारा है। मंगला भी ऐसा ही था जब छोटा था··· अब आया है राह पर···ऐसा शैतान हो चला था···इस बार वेतन मिलने पर ऐनक जरूर बनवाऊँगा······अरे, यह क्या है भूत सा······?"

मास्टर बाबू उस भूत से बचने के लिए पीछे हटे। उधर से फटफटी का भयानक स्वर···वह आगे बढ़े······लड़खड़ाये······ डगमगाये, जोर का धक्का···जन्न से आती हुई जीप मास्टर तुलसीराम को पटक कर चली गई।

"नाना···नाना···नाना जी···" विष्णु ने तड़प कर पुकारा।

मास्टर बाबू ने भीड़ के शोरगुल में भी उस नन्हीं सी प्यारी पुकार को सुना, नेत्र खोले, एक आँसू उनकी आँखों से निकल कर गालों के गड्ढों में ढुलक पड़ा, और फिर वह दीपक सदा के लिये बुझ गया।

ठंढी मशीन

सेठानी सोनाबाई के बेटे की दुल्हन रईस घर की कन्या थी। खूब लेकर आई। हीरे, मोती के नौ सेट, सौ साड़ियाँ, चाँदी के बरतन, शृङ्गार-दर्पण, बिजली का चूल्हा, गाने की मशीन आदि। बिरादरी की नारियों ने अन्दाज़ के तराज़ू पर ज़ेवर तोल-तोल कर देखा, जाँचा और दाम आँके। कोई चालीस-पचास हज़ार का माल था। सेठानी खुश थीं पर एक काँटा उनके दिल में चुभ रहा था। समधियों ने सब कुछ दिया, ठंढी मशीन न दी और वह रह-रह कर ठंढी साँसें भरने लगीं।

यह लोग वैसे तो मारवाड़ी हैं किन्तु वर्षों से लखनऊ में आकर बस गए थे। लेन-देन, सूद-ब्याज का काम करते थे। खूब पैसा कमा कर रक्खा था।

सेठ जी की मृत्यु के बाद लेन-देन का काम सेठानी जी करने लगीं थीं। बड़ी चतुर थीं अपने काम में। इनकम-टैक्स वालों को कानोकान ख़बर न होती थी। एक दिन शामत की मार कुछ कालेज के लड़के पहुँच गये, इनसे लगे पूछताछ करने। सेठानी का माथा ठनक गया। सोचा, अरे हो न हो, है यह कोई इनकम-टैक्स वाला। ऐसा चरका दिया उन लोगों को। उन्होंने कूच किया तो जान में जान आई।

"अय बिन्दणी," बहू से बोलीं, "ई कोई आयो रहो सरकारी भेदियो करम फूटो। म्हासूं एक-एक बात पूछी। वा पूछी कि आप टूथ पेश्ट करो या मंजण दातण। मैं बोल्यो आपां तो भाई दातण कर लेवाँ। फिर पूछवा लागो कि आपाँ मेज कुरसी पर खाओ वा अठणी-उठणी खा लेवो। तो मैं तो भाई कह दियो, किशाण री मेज कुरसी, उतरा नौकर कां से लाऊँ। आपाँ तो सीदा-सादा चौका माँ ही जीम लो। आप जादातर मोटर ऊँ जाओ या रिक्शा ऊँ, कूण सवारी आप बर्तो। ए बाई, म्हाने तो घणों डर लाग्यो ई कोई होय इणकम टैक्स वालो, आयो है पूछण को तई कि आपणी आमदणी कतरी की होय और सामणे मोटर खड़ी हो। तो माँ तो बासो कह दियो, अजी जाओ जी, किशी मोटर किशा रिक्शा, आपां तो भई बश मा चली जाओ और राम जी मोखलिया पैर दिया मैं कोण वास्ते जाऊँ शवारी माँ। ए भाई शाब आप ही बताओ इतरा पैशा कां शे आये। और जो आपाँ ये मोटर देखो तो या तो मेरे बेटे की हो, सरकारी अफीशर हो, हैसियत राखबो कै तईं राखणी पाड़े। ईको अतरो इस्तीमाल करूँ तो पिटरौल रो खर्चो न हो जाय। ए बाई, ई रहा कोई इणकम टिक्श वालो।"

मीराबाई की सास सोनाबाई होंगी कोई पचपन-एक वर्ष की। इस आयु में भी वह सुन्दर हैं। खूब गोरी-चिट्टी हैं। आँखें चौकनी और चमकीली हैं। उनका अंग-अंग चतुराई के पुर्जों से बना हुआ है। उनके पोर-पोर में पेंच है। और उनका दिमाग़ सिक्के बनाने की टकसाल है।

सेठ जी की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने काम सम्हाला। उनके मुनीम जी की क्या बात, "करम फूट्यो इणकम टिक्स वालो"

भी उनको चरका न दे सके। ऐसी चतुर चालाक थीं सोनाबाई। उनके दो बच्चे थे, बिन्दुबाई और कृष्ण कुँअर। दोनों को पढ़ा लिखाकर बड़ा किया। रुपये पैसे की कमी न थी। घर में नौकर-चाकर, ठाठ-बाट, धन-धान्य सभी कुछ था। पर इधर कुछ वर्षों से उनका मन उचट सा गया था। उनके दोनों बच्चे, फिरन्ट हो गये थे। बेटे ने लेन-देन का व्यापार करने से इन्कार कर दिया था। उसे सूद-ब्याज से नफ़रत थी। बाप दादों का काम छोड़ कर नौकरी करने लगा। माना सरकारी नौकर है, लेकिन नौकरी, नौकरी ही है। और फिर बँधी हुई तनखाह में बरकत कहाँ। तीन सौ, चार सौ में भला कहीं रईसों का गुजारा है। लेकिन कृष्ण बड़ा हठी था। बस एक बार जो न कह दी तो कहदी। एक बार जो क़दम बढ़ाया तो पीछे हटने का नहीं चाहे गलत ही हो। यूं कितना सुशील है, साँवले रंग का सलोना चेहरा लिए हुए, सोनाबाई पूजागृह में कृष्ण जी की मूर्ति के सामने घंटी बजाते हुए सोंचती।

बिन्दुबाई भी उनके जीवन की तिजोरी में खोटा टका बन कर खटक रही थी। उसने बी० ए० पास कर लिया था और कहती थी, मैं विवाह नहीं करूँगी। मैं देश की सेवा करूँगी या शादी करूँगी भी तो उससे जो ब्याजी न हो, व्यापारी, चोरबाजारी न हो; देश का सेवक हो, ईमानदारी की कमाई खाने वाला हो, जिसको वह 'लव' कर सके। यह 'लव' क्या बला है, सोनाबाई ठाकुर जी को पुष्प चढ़ाते हुए सोचतीं। यह पूजा का ही समय था जब वह इस प्रकार का चिन्तन-मनन किया करती थीं। दिन का समय हिसाब-किताब, डाँट-डपट, काम-काज में व्यतीत हुआ करता था, या फिर जो कभी बिरादरी की औरतें आ गईं तो इधर-उधर के किस्से-कहानियों में,

बहू-बेटियों की नुक़्ताचीनियों में, क्षणों की रेजगारी हाथ से उड़ जाती।

हाय। यूं कितनी रूपाली है, गोरी-चिट्टी, चम्पा-चमेली सी। नीलम की आँखें एक-एक लाख की होंगी, वह मन में अपनी बेटी की सुन्दरता का हिसाब-किताब जोड़ कर खरे-खरे दाम आँकती। हो न हो "करम फूट्यो" उस कालेज की अध्यापिका की करतूत है। घर में रेशम की कमी नहीं लेकिन हाय, छोरी नानीबाई पहने वही मोटा-सोटा खादी। हाय, उसकी रेशम की खाल छिल न जाती होगी। उनकी आँखों में आँसू आ गये। हे कृष्ण जी, म्हारे पै दया कीजो, उन्होंने घंटी बजाई।

आसन पर मन नहीं लगा। एक दुहाजू लखपती सेठ का पैग़ाम आ चुका था। बेटी को बुलाया, दुलार से कहा, "....ए नानीबाई, थारे मन में न आये कि थां लोग परण जाओ, थारे छोरा-छोरी होंय। याहि वास्ते तो थाँ लोग ऊली-ऊली फिरो। ए बाई, थाँ लोग को अब कुँआरो तो मील न सके। दूज बर ई मील सके तो काँई को बात नईं। जाते मोढ़ो लगा बैठो, छोरा छोरी मिलें। ए नानीबाई दूज बर खातिरऊँ घणी करे।"

बिन्दुबाई के गोरे, चाँद से माथे पर त्योरियाँ चढ़ गईं। उसने सर को झटका दिया। नागिन सी वेणी फुफकार उठी। एक-एक लाख रुपये की आँखों में आँसुओं के हीरे झिलमिलाने लगे। "हाँ, हम क्या कोई ऐसे हैं गये बीते, जो दूज बर से ब्याह करें, वह भी सेठ लाला से। जो हम भार हो गये हैं तो जाते हैं विनोबा जी के आश्रम। हाँ," नानीबाई ने अपनी आँखों के झरोखों से दर्द के हीरे बिखेरते हुए कहा।

नानीबाई को तो जन-सेवा की लगन लग गई थी। क्या

करेगी, कैसे करेगी, यह अभी वह तय न कर पाई थी। यह सही है कि कभी-कभी वह ऐसे युवक के सपने भी देखा करती जो ज्योति का पुँज हो, करुणा का स्रोत हो। ऐसे ही दिव्य व्यक्ति की प्रतीक्षा करते-करते उसकी आयु ढल रही थी, रूप का झरना सूख रहा था।

... ...

ठंढी मशीन तो नहीं पर स्नेह की ठंढी लहर लेकर उसकी भाभी घर में आई। करुणा और विनय के रेशमी तारों से बनी हुई वह सबके मन को मोह लेती, अपना बना लेती थी। वह थी बड़ी प्यारी। उसके मायके वाले मारवाड़ के रहने वाले थे। कहते हैं यह लोग मीराबाई के वंशज थे और उनको इस बात पर बड़ा गर्व था। कन्या का नाम मीरा रक्खा गया।

मीरा अपने वंश की प्रथा के अनुसार बचपन से ही कृष्ण की पूजा किया करती थी। ब्याह होने पर अपने दूल्हा को वह कृष्ण ही समझने लगी। दूर से उनका स्वर सुनते ही उसके शरीर के कोमल तार काँपने लगते, गालों पर सुर्खी नाचने लगती और वह होठों में आँचल दबा कर दरवाज़े की आड़ में छुप जाती।

उसकी सास सोनाबाई ने ग्यारहवीं बार बहू के ज़ेवर और रेशमी जोड़ों का निरीक्षण किया। फिर घर गृहस्थी की चीजों पर नजर डाली, बिजली का पंखा, गाने की मशीन, गद्दी-दार सोफ़ासेट, कालीन, केतली...। यह सब सामान समधियों ने ही दिया था। हाय, ठंढी मशीन...उनके मन से ठंढी आह निकली।

उनसे न रहा गया। मुंशी जी को बुला भेजा और पूछा क्या किया जाये। माँगना भी ठीक नहीं। करें तो क्या करें ?

मुंशी जी भी एक ही काइयाँ आदमी थे। ऐसे-ऐसे समधियों को चट से चुटकियों में उड़ा दें। बोले, "आप घबरायें नहीं बहू जी, देखिये, अभी आती है आपके दरवाज़े पर ठंढी मशीन। मशीन क्या, कहिये तो मोटर मँगवा दें। कहने-कहने का ढंग है। दो-चार रोज में आपकी समधिन यहाँ आने वाली हैं। बस, काम बन गया। यह तो आपका कहना दुरुस्त है कि माँगना ठीक नहीं। और कौन कहता है कि माँगिये, हम क्या कोई भिखमंगे हैं, टटपूंजिये हैं जो माँगें। लेकिन हाँ, आप बात-बात में कह दीजिये कि सुना है आपके यहाँ ठंढी मशीन है, या फिर आप यूं कहिये कि कहीं कोई दहेज में से उड़ा तो नहीं गया...बस इसी तरह जिक्र छेड़ियेगा...लेकिन देखिये, कुँवर जी को खबर न हो।"

सोनाबाई को जैसे अँधेरे में राह मिली। बात जँच गई।

"और हाँ, बहू जी, कल एक आदमी जड़ाऊ कंठा दे गया है, पाँच सौ रुपये माँग रहा था, मैंने तीन सौ टिकाये, यह देखिये, असली मोती, पन्ना है। बाज़ार में आज एक हज़ार को न मिलेगा, और बारह फ़ीसदी सूद। आप बाहर गई हुई थीं, मैंने सोंचा बहूरानी के लिये रख लूं।"

सोनाबाई ने हाथ में लिया, उनकी आँखें चमक गईं।

"पर जो वो आ गयो लेने के ताईं तो..." सोनाबाई ने शंका की।

"अजी, बहू जी आप कोई फिक्र न करें। उसकी नौकरी छूट गई है। बीमार है, सूद न दे पायेगा, असल की क्या बात। ऐसा फाँस लिया है साले को...माफ़ कीजियेगा...ही...ही...ही..." मुंशी जी जाल में तड़पती हुई मछली की कल्पना कर, हँसते हुए चल दिये।

दूसरे दिन बिरादरी में दावत थी, मीरा शृङ्गार-दर्पण के सामने खड़ी सज-बन रही थी। उसका रूप पल-पल पर निखर रहा था। नानीबाई ने उसको मेकअप का सामान दिया था। नन्हीं सी इत्र की शीशी अपने रंग-बिरंगे पंख फड़फड़ाकर जैसे नाच रही थी। टीके की सुनहरी डिबिया, काजल की सलाई, शिशु के गाल सा पाउडर का गुलाबी पफ़, उसके मुखड़े को चूमने के लिये ललच रहे थे। ऐसी ही प्यार की खलबली दर्पण के अन्दर मची हुई थी और वहाँ एक मोहनी बैठी हुई थी, जो मीरा बहू की नजर चुरा, लाज के मारे लाल हुए जा रही थी।

उसने एक गुलाबी डिबिया खोली, काँपते हुए हाथों से गालों पर जरा सा रंग लगा कर देखा। शर्म के मारे उसके कान लाल हो गये। हाय, यह क्या कहेंगे, हाय, सासू जी क्या सोचेंगी? उसने सुर्खी पोंछ डाली किन्तु नकली लाली के बजाय उसके गालों पर लाज की लाली उमड़ने लगी। हाय, अब क्या करूँ। अरे, यह कंठा...आह, कितना सुन्दर है। माँजी उसकी कितनी अच्छी हैं, कितनी प्यारी हैं। उसका दिल सास के क़दमों पर लोटने के लिये तड़पने लगा। आँखों में आँसू आ गये......

रात को सब लोग देर से लौट कर आये। मीरा बहू अपने कमरे में लौट आई। उसने अपनी छलकती हुई छवि को फिर से दर्पण में देखा। मन हुआ कि इसी प्रकार बैठकर देखती रहे, उस रूप की प्रतिमा को। वह दर्पण में बैठी हुई न जाने कौन है, रहस्यमयी, रूपवती, स्वप्न की छाया सी, कभी पकड़ में न आने वाली। उसका दिल दुखने लगा। मुँह से आह निकल पड़ी।

हाय, जो देख लिया इन्होंने तो क्या कहेंगे। उस नन्हें से

सौन्दर्य-कक्ष में कोई न था, फिर भी लाज से वह पानी-पानी हो गई। उसने कंठे को गले से उतारा।

एक पुराना फटा हुआ गुलाबी कपड़ा वहीं मेज पर पड़ा था, उसी में एक मुड़ा हुआ कागज दिखाई दिया। इसी में कंठा बँधा हुआ था। उसने उसे खोला, साफ-सीधा किया, सोचा, आज इसी में लपेटकर रख दूँ, फिर……अरे, यह तो किसी का पत्र है, कितना सुन्दर लेख है। वह अपने मन की उत्सुकता रोक न सकी। पढ़ ही डाला। उसका दिल धड़कने लगा। हाथ इस बुरी तरह काँपने लगे कि कंठा और पत्र दोनों छूट कर गिर पड़े। दिल में टीस उठी, आँखों में आँसू उमड़ आये। वह उठी, उसका सिर चकराया, पैर लड़खड़ाये और अचानक वहीं पृथ्वी पर मूर्छित हो गिर पड़ी। यह उसके जीवन की पहली ठेस थी।

… … …

घर भर परेशान था। बहू दुखी है, क्यों दुखी है, मुख से कुछ कहती नहीं। क्या करें, क्या न करें। अन्त में दूसरे दिन कहीं जाकर रहस्य खुला। नानीबाई के हाथ पत्र आया। पढ़ा, लिखा था :

मेरे जीवन के दीपक………।

आज मैं अपना अन्तिम ज़ेवर, यह कंठा दे रही हूँ। यह दुल्हन बनने पर मेरी माँ ने मुझे पहनाया था, और कहा था, 'बेटी, पति की सेवा, यही है तेरा धर्म।' ज़ेवर तुम बेच डालो, अपना इलाज करो। मैं यह पत्र लिख रही हूँ, तुम्हारे निकट न आऊँगी, कहीं तुम्हें मुझ पर दया न आ जाय………

तुम्हारी,
सन्ध्या।

बहू दो दिन से रो रही है। पराई सुहागिन जिसे वह जानती भी नहीं उसके दुख से दुखी है। आज उसने सवेरे से जल भी नहीं छुआ है। हाय, कैसा सूख गया है मुँह। सोनाबाई की आँखों में आँसू उमड़ आये।

आज कृष्ण ने भी उन्हें साफ़-साफ़ कह दिया था कि सूद-ब्याज का कारोबार बन्द कर दिया जाय। जिस-जिस के ज़ेवर रेहन रखे हैं वह वापस कर दिये जायँ। उधर नानीबाई ने भी आज सवेरे अपना अन्तिम निर्णय सुना दिया था। वह ब्याह नहीं करेगी, वह गाँव में जाकर काम करेगी। हाय, करम फूट गये। सारा घर उनका दुश्मन है—उनका बेटा, बेटी और बहू तो पराई लड़की है......हाय क्या करूँ ?

उन्होंने मुंशी जी को बुला भेजा। उन्होंने किस्सा सुना, सिर हिलाया। वह पहले ही सब जान गए थे। कुँवर जी ने आज ही उनको पत्र लिखा था कि यह सूद-ब्याज का काम बन्द होना चाहिए। यदि रुपया दिया भी जाय तो तीन रुपये सैकड़े पर वरना मैं घर छोड़ दूँगा। ईमानदारी का पैसा खाऊँगा। मुंशी जी पर चिन्ता का पहाड़ टूट पड़ा। इस घर का नमक खाया था, कैसे नष्ट होने दें, हार मानने वाले न थे, बोले, "आप फिकर न करें बहू जी, तीन सौ रुपये का गम सही। लेकिन लेन-देन न हो और यह तीन रुपया सैकड़ा। घर लुट जायगा बहू जी। और हाँ, बहू जी, धनकू को दूकान से निकलवा दिया है। एक सरदार पाँच सौ रुपये पगड़ी देने को तैयार है। पर कुँवर जी से न कहियेगा। आपकी समधिन आने वाली हैं न। बड़े रईस हैं वे लोग············।"

इतने में नानीबाई ने आकर कहा कि भाभी की माता जी

आई हैं। मुंशी जी की मूँछ की नोक फड़क उठी, उन्होंने ऐनक के ऊपर से बहू जी की ओर देखा। सोनाबाई ने उनकी ओर देखा, मन में निश्चय कर लिया। एक ओर से मुंशी जी चाँदी के मुट्ठे वाली छड़ी हिलाते हुए चल दिये, दूसरी ओर से चिकन की साड़ी और हीरे की तरकियों में चमकती हुई समधिन रानी पहुँची।

बहूरानी और नानीबाई भी आ गई थीं। सोनाबाई ने एक को नाश्ता लाने और दूसरी को जल लाने भेज दिया। धीरे से बोलीं, "ए समधन भैन, जाणू आप ठंढी मशीन देबा के ताईं कह्यो हो। जब बिन्दणी के सब चीज उलरचायो तो म्हाने तो ठंढी मशीन कहीं न दीखी। म्हाने तो घणी घबराहट लागे कि··· बा···रे···ई काँई हो ग्यो। जंगल को रास्तो। सब रे जणु ने पतो है कि राजा शाब री बेटी परण री। कई कोणी रास्ता माँ उतार तो न लीओ। या बी हो शके कि आपाँ लोग बड़ा आदमी ठहरा। पीशा रो आपाँ लोग फिकर न करो। काँई खरीद लियो हो और दुकान शे लाणो ई भूल ग्यो हो। भैण जी, आप तो आपणा शम्बन्धी हो गयो, आपा तो जिशान आपणी चीज़ को चिन्ता करूँ, ऊशी आपकी बी समझूं। आपरो नुकशान तो म्हारो नुकशान। तो आप पतो करलो कि वा ठंढी मशीन कठे गई। कईं दुकानदार, रामस्यो करम फूट्यो, धोखो तो नईं कर दियो, पीशा ले हजम कर ग्यो और चीज मुकलावा माँ मक्कर कर गयो। अजी, आप तो जा वाकी खबर लीज्यो·········।"

नानीबाई लौट आई थी। माँ बेटी को देख चुप हो गई। समधिन उड़ती चिड़िया पहचानती थीं। समझ गईं। कुछ मुस्कराईं। बेटी लाडली थी।

दो-चार दिन में ही दो हज़ार रुपये की ठंडी मशीन आ गई, तब जाकर सेठानी का मन ठंडा हुआ। किन्तु घर में किसी को कानों-कान ख़बर नहीं कि मशीन कैसे और क्यों आई।

मशीनों के आँसू

वह......ह......कहाँ है.........?" मीना के कण्ठ से स्वर न निकला था, केवल उसके होठों की सूखी पपड़ियों का आकार प्रश्न बन गया था। केवल होठ ही नहीं, उसकी फटी-फटी आँखें, केशों की बिखरी हुई लटें, और मशीन के तार सी पतली-पतली काँपती हुई उँगलियाँ बस तड़प-तड़प कर यही पूछ रही थीं, "व...ह...व...ह...कहाँ है......?"

मधु का हृदय काँप उठा। कहे क्या? बात टालने के लिए, लापरवाही दिखाते हुए बोली, "उँह, चल उठ, पहले नहा धो, फिर कुछ कहना। चल...चल...अरी उठ। फूल कहीं भागी जाती है। जी खोल कर मिल लेना। ला, चाभी दे...तेरे कपड़े निकाल दूँ सूटकेस से...कुछ लाई है लन्दन से मेरे लिए, सेन्ट-वेन्ट या खाली हाथ चली आई। कहाँ है तेरी इटैची, साबुन, कंघा? लाई है कि नहीं?"

"हाँ, हाँ, लाई तो हूँ, यहीं कहीं है, बाहर होगा, मेरा बैग भी ले आओ तुम्हीं।"

मधु अन्दर बाहर सब देख आई, बैग न मिला।

"अरे, वह तो टैक्सी में ही रह गया, मीना बोल उठी, नीचे पायदान पर रखा था, फिर लेना भूल गई......हाय, क्या करूँ, मेरा दिमाग तो......।"

"उँह, तेरा दिमाग तो बस···अच्छा, चल उठ ना।"

"कहाँ है वह, बोल," मीना उठ खड़ी हुई और उसने मधु की कलाई को दबोच लिया।

"ओहो, तूने तो मेरी खाल नोच ली।"

"नहीं, नहीं, बता।"

"वहीं है, घर पर।"

"तू क्यों नहीं ले आई?"

"उन्होंने भेजा नहीं।"

मीना का सिर चकराया, पैर लड़खड़ाये और वह अचेत होकर पट से भूमि पर गिर पड़ी।

··· ··· ···

आधी रात बीत चुकी थी किन्तु मीना की आँखों में नींद न थी। आकाश में तारे झिलमिला रहे थे। धीरे-धीरे वह सितारे, सितारे न रहे, फेंके हुए अनाथ बच्चों के मुखड़े बन गए, आँसुओं में भीगे हुए। उसने आँखें बन्द कर लीं और अपनी कल्पना को मन के कारखाने में ढकेल कर ताला लगा दिया। अँधेरे के भूत मुँह फाड़, भाँय-भाँय काटने को दौड़े। कल्पना को राह मिली, आँखों के झरोखों से निकल, उड़ चली और फिर मासूम मुखड़ों की दुनिया में पहुँच गई।

मीना उठ बैठी, खड़ी हुई, फिर बैठ गई। चारों ओर सन्नाटा था। मधु ने करवट ली। मीना ने उसके कन्धे पर हाथ रक्खा। वह चौंक कर उठ बैठी।

"अरे, तुम हो? मैं समझी……। ओह, मैं तो डर गई। नींद में लगा जैसे कोई बच्चों का चोर अरुण को मेरे हाथों से छीन कर लिए जा रहा है। हाय, मेरा दिल तो अभी तक धड़क रहा है।"

"मैं समझी तू जाग गई है, क्या करूँ, मुझे तो नींद आती नहीं। सुन, मुझे बड़ा डर लग रहा है, अगर उसने बच्ची को न दिया तो………?"

"क्यों न देगी? पागल, आजकल माँ अपने बच्चों की देख-भाल तो कर नहीं पाती, दूसरे की बला सिर पर कौन लेगी? और फिर, वह तो तेरी बचपन की सहेली है न।"

"बचपन की सहेली! हाय, मुझे क्या पता था कि वही नरगिस जो इतनी भोली-भोली थी, इतनी प्यारी-प्यारी बातें करती थी, मुझे देख कर लिपट जाती थी वह…वही मेरे घर के छप्पर में आग लगायेगी। चुड़ैल कहीं की।"

"न……न……न……छिः। उसने जो कुछ किया, तू क्यों जबान बिगाड़ रही है। चाहे तू न मान, भूल तूने की। तू घर-बार छोड़ कर क्यों चली गई लन्दन? किस बात की तुझे कमी थी? दो बरस भी शादी को न हुए थे।"

"मुझे क्या पता था कि मेरे पीछे मेरा घर लुट जायगा। काम करने गई थी, सैर-सपाटा करने नहीं। कुछ न होता अगर वह………।"

"अरे, नरगिस न होती चमेली होती। इन्दर को कोई न कोई चटपटी चट्टको चिमट ही जाती, किसी को खुला शिकार मिल जाये तो कोई छोड़ता है?"

"लेकिन, फिर भी, एक बचपन की सहेली। हाय, मधु, तू क्या जाने वह मुझे कितना प्यार करती थी। मेरे इशारों पर नाचती थी। बाजार से जैसी साड़ी मैं लूँ, वैसी ही वह भी, चाहे वह रंग उस पर फबे या नहीं। यहाँ तक कि जूती, चप्पल, रूमाल, सेंट में भी मेरी ही नक़ल किया करती थी।"

"तभी तो, बाज़ार में दो एक सी रूमालें, दो चप्पलें, तो मोल मिल सकती हैं पर दो पति या दो बच्चे एक से थोड़ा ही मिलेंगे। इसीलिए उसने इन्दर और फूल दोनों पर ही हाथ साफ़......।"

फूल का नाम तीर की नोक बन कर मीना के मन में चुभा। व्यग्र होकर बोली, "तो क्या तुम समझती हो कि वह......?"

मधु को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। चट से बोली, "मीना, नारी चाहे कितनी ही नीच क्यों न हो पर वह यह कभी न करेगी कि किसी की बेटी छीन ले और फिर क्यों? जिस चीज़ पर उसकी नजर थी वह तो उसको मिल ही गई। अब एक फूल की नन्हीं सी जान लेकर वह क्या करेगी। पगली कहीं की। दिमाग़ फिर गया है तेरा, जा, सो जा, मुझे भी सोने दे।"

धीरे-धीरे मीना को नींद आ ही गई। यात्रा के कारण थकी हुई थी। किन्तु मधु की नींद उचट गई थी। ऊपर से उसने लापरवाही की नक़ाब डाल ली थी, वह भी मीना को दिखाने के के लिए, उसके मन को शान्त करने के लिए, किन्तु अन्दर से उसका मन उद्विग्न हो उठा था।

मीना, नरगिस और वह स्वयं, तीनों एक ही विद्यालय में पढ़ा करती थीं। उसके मन के धवल पट पर वह मस्ती के दिन,

रंगीन चलचित्र के समान घूमने लगे। नरगिस मीना पर मरती थी, वह खुद भी तो, और कई बार मारे जलन के वह नरगिस से लड़ भी चुकी थी। और मीना, उसे शायद इस प्रेम का उत्तर देने का समय ही न था, पढ़ने में इतनी लगी रहती थी वह। नरगिस उसके लिए ऐसी ही थी जैसे सर्दी की रात में पढ़ते समय हाथ सेंकने के लिए काँगड़ी की आग या खूब गर्मी की तपिश में किसी की सफ़ेद चुनरी से खस की हल्की-हल्की सुगन्ध या थक जाने पर नौका की अलसाई हुई सैर। नरगिस थी कुछ ऐसी ही, चुस्त अँगिया में बँधी हुई, मदमाते, अलसाते अंगों-वाली, काँगड़ी की आग सी सुलगती, तड़पती हुई सी। साटन के कुर्तों का जिसकी तंग काट में उसकी अँगिया का उभार साफ़-साफ़ नज़र आए, या रेशम की बारीक चुनरी जो उसके अंग ढाँप कर भी ढाँप न सके या मन में प्रेम के स्वप्न चुनने वाली सेन्ट की भीनी-भीनी सुगन्धि, यही उसको अच्छा लगता। किताब गोदी से कब गिर पड़ी, उसे होश न था और वह पलँग पर आधी लेटी हुई सामने शृङ्गार-दर्पण में अपनी छवि के नए रूप पर, जो बरसाती नदी की तरह अचानक उमड़ आया था, रीझ कर मस्त हो जाती, अंग-अंग तीखी अकड़न से भर जाते और वह अपने ही जादू से बेबस हो आँखें मूँद लेती।

मीना थी दुबली पतली, पुर्ज़े की तरह फिरकियाँ लेने वाली, फ़ुर्तीली, तेज़। लगता था कि जैसे वह एक लड़की नहीं बल्कि एक मशीन हो, साफ़-सुथरी, पालिश की हुई, चमकती हुई, नई-नई, काम देने में खूब तेज़ और चुस्त, जिसका कोई भी पुर्ज़ा ढीला न हो।

मीना परीक्षा में सदा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर एक

कालेज में अध्यापिका नियुक्त हुई। नरगिस ने पढ़ाई छोड़ दी और किसी सौन्दर्य-शाला में नौकरी करने लगी।

एक वर्ष के अन्दर ही मीना का विवाह इन्द्रकुमार से हुआ। वह देहली में किसी फ़र्म में नौकर था। दोनों ने अपनी गृहस्थी बनाई। एक कन्या हुई, फूल सी कोमल। इसीलिए उसका नाम रक्खा गया फूल। जब वह एक ही वर्ष की थी तो मीना को शिशु-मनोविज्ञान के लिए लन्दन में एक छात्रवृत्ति मिली। मधु को याद आया कि उसने कला को बार-बार कहा था कि इस लोभ में न पड़, अभी तो तेरा ब्याह हुआ, फूल छोटी है, घर छोड़ कर जाना ठीक नहीं। किन्तु उदार छात्रवृत्ति, इंगलैंड और योरप की सैर के सपने, चमकता हुआ भविष्य इन सब बातों ने उसके दिमाग़ को धुँधला कर दिया था। फिर इन्द्र उसी के पक्ष में था। वह चुप हो गई। बच्ची को नानी के हवाले कर मीना बच्चों के मनोविज्ञान पर अनुसंधान करने के लिए लन्दन चली गई।

पाँच छः महीने के पश्चात् नानी की जब मृत्यु हुई तो उस समय भी उसको आने के लिए लिखा था किन्तु मीना अपने पत्र में ही अश्रु छलका कर मौन हो गई थी। इन्दर फूल को अपने पास रखने लगा और एक आया उसकी देख-भाल करने के लिए रखली गई। कभी-कभी नरगिस भी आया करती थी। जब फूल बीमार पड़ी तो वह यहीं आकर रहने लगी। उसके प्यार और सेवा से शिशु की जान तो बच गई, किन्तु, जो होना था वह हुआ।

फूल का ध्यान आते ही उसे अरुण की याद आ गई। उसके जीवन के तार भी इसी प्रकार बिखरे हुए हैं। विष्णु अमेरिका

में है, वह स्वयं देहली में है और दोनो का पुत्र अरुण प्रयाग में है। वह विष्णु के साथ जा सकती थी किन्तु सरकारी नौकरी कैसे छोड़ती। अरुण नानी के पास है क्योंकि यहाँ देखने वाला कौन है। उसका मन व्यथित हो उठा।

उससे लेटा न गया, वह उठ बैठी। क्या करूँ? क्या नौकरी छोड़ दूं? जाऊँ अमेरिका? किन्तु यदि उन्होंने मेरा अपमान किया तो? अब तो वह पत्र का उत्तर तक नहीं देते। अरुण का खर्चा भी भेजना बन्द कर दिया। हाय, जाते समय कितना रोये थे, मैंने ही उन्हें जबरदस्ती भेजा। साथ चलने के लिए कितना कहा, पर मेरे सिर पर नौकरी का भूत सवार था। क्या मिल गया मुझे, न मेरा घर है न गृहस्थी। बेटा है सो अलग। पति है सो छूट गया। हाय, कब आएँगे वह? और यदि मैं त्याग-पत्र देकर गई और उन्होंने मेरा अपमान किया तो? फिर दुबारा यह नौकरी थोड़ा ही मिलेगी। हाय क्या करूँ? उसका सिर भिन्ना गया।

अकेली मैं ही नहीं, कई नारियाँ इसी उलझन में हैं, उसने मन बहलाने के लिए सोचा। और, फिर वह इस समस्या का इतना विस्तृत रूप देख स्वयं चकित हो गई। यह मीना या मधु के जीवन की ही नहीं वरन् समस्त युग की समस्या है। स्वतन्त्र जीवन या परिवार, नारी को इनमें से एक चुनना है, या फिर इस युग में यदि दोनों आवश्यक हैं तो उनमें कहीं पर कुछ मेल करना ही पड़ेगा। किन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर परिवार का बलिदान तो हो नहीं सकता, नहीं...नहीं...कभी नहीं। परिवार तो नारी का दुर्ग है। हाय, उसका नन्हा सा घोंसला है।

तो क्या हो? कैसे हो? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम

इस समस्या को नये ढंग से हल करें। अर्थात् नारी के बौद्धिक जीवन का विकास इस प्रकार हो, धीरे-धीरे शान्ति-पूर्वक, भूकम्प के समान नहीं, कि परिवार का दुर्ग ढह कर गिर न पड़े।

लेकिन यह कैसे हो? उसका मन निराशा से भर गया। उसे लगा जैसे यह संसार एक बड़ा सा कारखाना है, मानवजाति एक मशीन है और व्यक्ति केवल नन्हा सा पुर्ज़ा है, गोल-गोल फिरकियाँ लेता हुआ, परवश और विवश। उसका दिमाग़ पुर्ज़े की तरह तेज़-तेज़, घर्र···घर्र···घूम रहा था जिसकी आवाज़ से कनपटियों की दीवार फटने लगी।

... ...

कल इतवार था इसलिए वे लोग फूल को लेकर आगरे गये हुए थे। आज सवेरे लौट आने की बात थी। मीना ऐसे समय जाना चाहती थी जब इन्दर वहाँ न हो। इसलिए दोपहर को आफ़िस के समय ही जाना ठीक होगा। हाय, यदि वह घर पर ही हुए तो? कैसे वह उनसे आँख मिलायेगी? उसका हृदय काँप उठा।

जैसे-जैसे उनके घर जाने का समय निकट आता गया, उसके हाथ-पैर फूलने लगे। उनका घर! कभी वह उसी का घर था। कितने उत्साह से सजाया था उसने अपना घर। उसे वहाँ की एक-एक वस्तु याद आने लगी। वह दर्पण वाली शृङ्गार-मेज़, उसने कितनी कठिनाई से खरीदी थी, पैसे बचा-बचा कर, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने में किफ़ायत करने के पश्चात्। और वह कालीन, कुर्सियाँ, फूलदार गद्दियाँ, आसमानी तितली के फड़-फड़ाते पंख जैसे बारीक पर्दे, बेजान न थे, फूल की तरह वे भी छोटे-छोटे सुकुमार बच्चे थे, जो अपनी भोली आँखों से उसको

देख रहे थे और उसकी स्मृति की चादर को घसीट घसीट कर अपने गूंगे स्वर में पूछ रहे थे, "तुम हमको छोड़कर क्यों चलीं गईं थीं, मम्मी ? बोलो ?"

मधु आफ़िस से छुट्टी लेकर चली आई थी।

"मधु, तुम जाकर ले आओ न फूल को, या मथुरा को भेज दो, ले आए ?"

"अजी हाँ, लड़की तेरी है और मैं जाऊँ लेने के लिए। चल, चल। डरती क्यों है। विलायत हो आई लेकिन है अभी वैसी ही डरपोक। और फिर मीना, एक दिन तो आमना-सामना होगा ही। आज ही सही। चल, टैक्सी आ गई।"

मोटर चल पड़ी और नई देहली की शानदार सड़कों को पार करती हुई इन्दर के घर के निकट पहुँचने लगी।

"अगर उसने मुझे घर न घुसने दिया ? मेरा अपमान किया तो ? मैं तो वहीं सिर पटक कर मर जाऊँगी।"

"क्यों करेगी ? उसका ब्याह हो गया, घर पर कब्जा हो गया। अब और अधिक अनिष्ट तेरा क्या करेगी ?"

"हाय, अगर अब एक बार मिल जाय फूल तो उसे कलेजे से ऐसे लिपटा लूंगी। प्यार के सौ ताले लगाकर रक्खूंगी मैं उस हीरे की नन्हीं सी पुड़िया को। हाय, मैं उसको छोड़कर क्यों गई ? क्यों ?"

मधु ने उसका हाथ थाम लिया। गाड़ी बँगले में पहुँच गई थी।

दो तीन बार खटखटाने पर अन्दर की चिटकनी खुली और नरगिस निकल कर आई।

मधु ने उसकी ओर देखा, चकित होकर। नरगिस, अब वह पहले जैसी रँगीली, छबीली, मदमाती, बलखाती, रस-भरे अंगूर की बेल सी न थी। सीधी-सादी, घरेलू गृह-वधू सी थी। किनारीदार, सफ़ेद, सूती धोती, पहिने हुए थी, वह भी सीधा पल्ला किए हुए। कमर में कुञ्जियों का गुच्छा था। पैर चप्पल के बिना थे, गोरे-गोरे और नंगे, जैसे कि वह रसोई घर से चौका बासन उठाकर चली आ रही हो।

बरामदे में कुर्सियाँ पड़ी थीं, तीनों वहीं बैठ गईं। मीना और नरगिस दोनों गुमसुम। दो-चार मिनट इस भयानक सन्नाटे में बीत गए। मधु के लिए यह असह्य हो उठा। बात उसने शुरू की। सर्दी-गर्मी, अनाज-पानी, के विषयों पर बात होती रही और सामने चमन में खेलते हुए दो-चार बच्चों का सहारा ले मधु ने फूल का नाम लिया।

"हाँ, साल भर हुआ फूल बहुत बीमार हो गई थी, आया ने कुछ लापरवाही की। अब तो ख़ैर ठीक है। इलाज हो रहा है," नरगिस ने कहा।

मीना ने सुना या नहीं सुना, वह खड़ी हो गई थी। सामने खिड़की के शीशे से अन्दर कमरे का दृश्य साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा था। कमरा ख़ाली न था, एक गुलाब का फूल उसमें चमक रहा था। घुँघराले बालों में वह फूल सा मुखड़ा! मीना का दिल धक से हुआ। क्या यह वही है...वही? हाँ वही तो, बड़ी-बड़ी, भोली, दर्द-भरी, ख़ामोश आँखें। उसके नन्हें-नन्हें लाल

चिड़ियों से हाथ हवा में किसी खिलौने को पकड़ने के लिए फड़फड़ा रहे थे। बच्ची की मसहरी की छत से एक चाँदी की नन्हीं सी घंटी लटक रही थी। वह उसी को पाने के लिए छट-पटा रही थी। घंटी उसकी फड़फड़ाती हुई उँगलियों से कोई चार इंच ऊँची थी। वह ऊपर उठी, घंटी केवल चमक कर रह गई। पंख एक बार फिर फड़फड़ाए, चाँदी की परी ने फिरकी ली, बोली, टन···टन···टन। फूल उस परी के पाने के व्याकुल हो उठी। इस बार उसने पूरी शक्ति लगाकर उचकने का यत्न किया और वह उतने ही जोर से लड़खड़ा कर औंधे मुँह गिर पड़ी। उसका माथा पलंग की पाटी से जा टकराया। वह रोने लगी, शायद चोट पर नहीं, अपनी बेबसी पर। उसकी टांगें बेकार हो चुकीं थीं।

नरगिस भी खड़ी हो गई थी। दोनों ने एकटक एक दूसरे की ओर पल भर देखा। मीना अन्दर कमरे में जाने के लिए झपट कर बढ़ी। नरगिस बिजली की तरह पहले ही पहुँच गई थी और दरवाज़े के सामने रास्ता रोक कर खड़ी थी। फूल के रोने की आवाज़ सुन कर मीना पागल हो रही थी। राह में रुकावट देख कर वह घायल शेरनी की तरह लपकी और नरगिस को ढकेल, बच्ची पर झपटने को हुई। नरगिस ने बड़ी उपेक्षा से उसे धक्का दिया। मीना पर एक भूत सवार था। अन्दर से आती हुई रोने की आवाज़ सुन कर वह उन्मत्त हो रही थी। हाय, यह उसी के दिल के टुकड़े की चीख़ थी। वह फिर झपटी, और जब तक मधु समझे कि क्या हुआ, दोनों ने एक दूसरे के चेहरे को नोच लिया था। नरगिस हट्टी-कट्टी थी, उससे पार पाना आसान न था। उसने बड़ी नफ़रत के साथ मीना का कन्धा पकड़ उसे पीछे ढकेल दिया, वह कुर्सी पर गिर पड़ी। उसका

सिर पत्थर की मेज़ से टकराया और वहीं पड़ा रहा। उसके अंगों को जैसे लकवा मार गया था।

नरगिस कुछ पल बड़ी घृणा से उस टूटे हुए शरीर को देखती रही। फिर दाँत पीस कर बोली,

"मुझे तुम से, तुम्हारे जैसी औरतों से नफ़रत है, नफ़रत। तुम इन्सान नहीं, औरत नहीं, मशीन हो। तुम्हारा दिल, दिल नहीं बस एक लोहे का पुर्जा है। तुमने अपना दिल बेच डाला, डिग्रियों की लालच में। तुम क्या जानो मां की ममता, पत्नी का प्रेम। अपने भोले लड़कपन में मैंने हमेशा तुमको ऊँचा समझा और अपने आपको छोटा समझती रही। लेकिन अब मैं समझ गई हूँ कि मैं तुम से ऊँची हूँ, बहुत ऊँची, क्योंकि मेरे पास दिल है, प्यार से भरा हुआ दिल।

"और रही फूल की बात तो वह उसी दिन मर गई, जिस दिन उसकी माँ उसे छोड़ कर चली गई, या जिस दिन वह बीमार पड़ी और यह सुनकर भी वह न आई। उस समय मैं ही तो थी उसके सिरहाने। इन्दर ने रो-रो कर कहा था, 'नरगिस, इसे जिला दो, यह बच्ची तुम्हारी है।' अब वह किस मुँह से वापिस लेंगे इसे। और इतना समझ लो, मैं अदालत से भी नहीं डरती। मैं कहूँगी, जो औरत इस बेरहमी से अपने बच्चे को छोड़ दे उसका अब उस पर कोई हक़ नहीं। यह मेरी है, मेरी है, मेरी···लँगड़ी, लूली जैसी भी है। मैं इन्दर को छोड़ दूँगी, इस घर को भी, तुम सब वापिस ले लो। लेकिन, फूल मेरी है, मेरी, हाय, मैं क्या करूँ ?" और वह फूट-फूट कर रोने लगी जैसे उसका दिल फट जायेगा।

मधु ने किसी तरह मीना को उठा कर टैक्सी पर बिठाया। मोटर चल पड़ी। मीना की आँखों से गर्म-गर्म तेल टपक रहा था, टप···टप···टप···।

मधु परेशान थी, क्या करे, क्या न करे। एक नन्हीं सी लँगड़ी पर दो औरतों के दिल टूट रहे थे। उसका दिल व्यथा से भर गया। उसने फूल की माँ को अपने वक्ष से लगा लिया। फूल की माँ···कौन है उसकी माँ, मीना या नरगिस ? एक ने उसे जन्म दिया और छोड़ दिया, दूसरी ने उसे जन्म नहीं दिया किन्तु मृत्यु के मुख से बचा लिया, प्यार के रिश्ते से अपना बना लिया। इस प्रश्न को कौन हल कर सकता है ?

दोनों नारियाँ रो रहीं थीं, घिसी हुई मशीन की तरह, घर्र··· घर्र······घर्र······।

रेडियम के अक्षर

वह प्रथम बार इस ओर आई थी। न जाने कौन सी बस्ती थी, शहर के अन्दर, फिर भी दूर, उजड़ी हुई, लुटी हुई। गलियाँ क्या थीं, भूलभुलैयाँ थीं, पतली-पतली, टेढ़ी-मेढ़ी, आड़ी-तिरछी, एक के अन्दर से दूसरी निकलती हुई, फिर तीसरी जैसे कि यह कभी समाप्त न होंगी, जादूगर की पिटारियों सी, दार्शनिक के मस्तिष्क में घूमती हुई विचार की धुँधली परछाईयों सी......।

मैं इस समय नगर के किस कोने में हूँ ? ईश्वर जाने, तारा सोच रही थी। कितना सन्नाटा है...ओह ! यदि यह रिक्शा वाला मुझे यहीं पर छोड़ दे या मेरा बैग...उसकी उँगलियों ने उस नन्हें से फ़ैशन के ख़जाने को दबोच लिया। उसका दिल धड़कने लगा, टक्...टक्...टक्...।

उस सन्नाटे को, पहियों की खड़खड़ाहट या कभी-कभी घंटी की टनन...टनन चीरती हुई चली जा रही थी। नुक्कड़ पर पीपल के पेड़ को पार करने के बाद गली कुछ तंग हो गई थी। यहीं कहीं आस पास है, वह घर। उसने चारों ओर दृष्टि का कैमरा घुमाया। गली के दोनों ओर एक दूसरे से सटे हुए मकानों की कतारें खड़ी हुई थीं। मकान क्या थे, खण्डहरों के

ढेर थे या प्राचीन गृहस्थियों के भूत-प्रेत थे। दरवाजों पर लटके हुए फटे-पुराने, अधगले टाटों से लगता था कि इन्सान वहाँ रहते ही होंगे। वरना, सब ओर सन्नाटा। कोई चहल-पहल नहीं, ठाट-बाट नहीं। यह बस्ती शहर के उन भागों में से थी जहाँ का खून-पसीना निचोड़ कर, हड्डियाँ पीस कर, हजरतगंज की दो-एक आलीशान, चकाचौंध करने वाली इमारतें, बना कर खड़ी की गई हैं।

दूर सामने से आती हुई एक रिक्शा, टनन······टनन······। इस धुँधली गली में यह सफ़ेद-पोश कौन ? कोई जान-पहचान का मिल गया तो ? हाय, यह मुझे क्या सूझी। उसका दिल उछल कर गले में खट से अटक गया। रिक्शा निकट आई और सट से निकल गई। तारा की जान में जान आई। कोई अनजान बुरक़े-वाली थी।

अब भी लौट चलूं ? किसी ने देख लिया तो ? सुन लिया तो ? उफ़ इस गली में······

मोड़ पर घूमते ही एक युवक उसी की ओर आता हुआ दिखाई दिया। उसके कुछ-कुछ बिखरे हुए बाल, लापरवाही की अदा और हँसमुख चेहरा देख कर रमणी के मन की शंका ऐसे लुप्त हो गई जैसे बिजली का बटन दबाने पर प्रेत की छाया।

"मैं तो लौट कर जा रही थी। भला यह भी कोई शरीफ़ इन्सान के रहने की जगह है ?" उसने साइकल-रिक्शा से उतर कर कहा।

"क्यों, क्या मैं इन्सान नहीं ?" युवक ने हँस कर कहा। प्रसन्न था।

तारा ने सम्हल कर पैर रक्खा। सीढ़ी का ढाँचा झूलने लगा। उसे डर लगा कहीं वे दोनों पटरों समेत नीचे न आ पड़ें। युवक ने अचानक उसकी बाँह पकड़ कर उसे थाम लिया। तारा का मस्तिष्क विद्युत की फिरकी सा घूम गया। वह गिरते-गिरते बची।

दोनों कमरे में पहुँच गये। द्वार पर एक फटी हुई धोती का आसमानी, झीना पर्दा झलक रहा था। अन्दर फ़र्श पर दरी बिछी हुई थी। दो-तीन कुर्सियाँ और एक मेज़ पड़ी थी। यह सामान शायद किसी कबाड़ख़ाने से ख़रीदा गया था। अलमारी में कुछ पुस्तकें रखी हुई थीं।

दीवार पर सीलन थी, चूने की पपड़ियाँ उखड़ी हुई थीं किन्तु कील के सहारे लटका हुआ रवीन्द्रनाथ टैगोर का चित्र कमरे को इस प्रकार आलोकित कर रहा था जैसे एक ग़रीब फटेहाल बच्चे के मुख को चमकाती हुई उसकी भोली मुस्कान। यह सब तारा ने एक ही बार दृष्टि घुमा कर देख लिया।

"तुम्हारे लिये चाय तो बना लूं। फिर कुछ बात होगी। हाँ, पानी तो मैंने पहले से ही चढ़ा रक्खा है। पहली बार तुम आई हो इस ग़रीब के घर, फिर न मालूम कब आओ, शायद कभी नहीं। बीता हुआ क्षण लौट कर क्या कभी आया है ?" मुस्कान की रेखा पल भर के लिये केशव के सुन्दर लैम्प से चेहरे को चमका कर बुझ गई।

"अरे···रे···अभी न डालो चाय की पत्ती। केतली तो गर्म कर लो। उँह ! तुमको चाय बनाना भी नहीं आता। लाओ, मैं बना दूँ।"

"न...न...न...चाय मैं ही बनाऊँगा। यह कष्ट देने तुम बार-बार नहीं आओगी, मैं जानता हूँ।"

उसने अपने अनाड़ी हाथों से चाय बनाई और प्यालों समेत केतली लाकर तारा के पास फ़र्श पर रख दी।

"अरे, यह क्या ?" तारा के मुख से निकला। प्याले की बाँह टूटी हुई थी।

"यह एक ग़रीब पत्रकार का प्याला है। किन्तु, इतना अवश्य कह दूँ कि घर में सबसे अच्छा प्याला यही है। यह दूसरा है तो इसकी दीवार में दरार है। रूमाल से पकड़ लीजिये। बस अब ठीक है। है न अच्छी चाय ?" उसने केतली को बुरक़े से ढाँप कर कहा।

"तुम्हारी इस अंक की कहानी से तो अच्छी है।"

"ठीक कहती हो। अरे, यह क्या है, गुलाबी रिबन में बँधा हुआ ? देखता हूँ विधाता ने आज मुझ पर विशेष कृपा की है।"

"जी नहीं, तुम्हारे ऊपर नहीं, तुम्हारी बेटी पर कृपा की गई है। लो खोलो, देखो.........।"

केशव ने रिबन और कागज़ उतारा। उपहार पुस्तक के रूप में था, अत्यन्त सुन्दर शीर्षक था, "समुद्र की मत्स्य-परी"। उसने पन्ने उल्टे, चित्र एकाएक ऊपर को उभर आये। उस ग़रीब की कोठरी में समुद्र की नीली लहरें उमड़ने लगीं, झरोखे चमक उठे, हीरे-पन्ने बिखर गये और सुनहरे वस्त्रों में लिपटी हुई मत्स्य-परियाँ इधर-उधर नाचने लगीं। न जाने वह बिछुड़ी हुई

बेटी की स्मृति थी या किसी की स्नेह-भरी भावना जिसने उसके हृदय को ठेस पहुँचाई। उसने अश्रु-बिन्दुओं को आँखों के कोनों में ही रोक लिया।

किन्तु, एक ग़रीब बेटी के लिये यह उपहार, यह ऐश्वर्य! इन हीरे-मोतियों या सितारों जड़े सुनहरे-रुपहरे वस्त्रों के सपनों को लेकर एक निर्धन बालिका क्या करेगी कौन सा ज्ञान प्राप्त करेगी, अभाव को कैसे पूरा करेगी। यह उसकी समझ में न आया। बालिका को अभी से ही मृग-मरीचिका के चक्कर में डालने से क्या। उसका मन हुआ उपहार वापिस कर दे।

"क्यों, अच्छी लगी यह पुस्तक?" तारा ने अत्यन्त भोले-पन से पूछा।

"न, यह न समझेगी मेरी बात," केशव ने मन में सोचा। बोला, "अच्छी है, अत्यन्त सुन्दर। किन्तु मैं यह सोच रहा था, कि एक निर्धन बालिका को इस वैभव से क्या प्रयोजन।"

"उँह, फिर तुमने वही बात की। चुप करो। कब आयेगी वह?"

"तुम्हें बच्चे क्या बहुत प्यारे लगते हैं?"

"क्यों नहीं? किसे नहीं लगते प्यारे। क्यों, तुम चुप क्यों हो गये? क्या तुम्हें नहीं अच्छे लगते?"

"नहीं। बच्चे प्यारे तभी लगते हैं जब जेब में पैसा हो। इतना अवश्य है कि मेरे जीवन में जो कुछ भी हर्ष है वह केवल एक बारीक तार के सहारे चमक रहा है और वह तार है निशा

की नन्हीं सी जान। यह घर आजकल उसके बिना भूतों का डेरा है। भूत कौन हैं, मैं ही हूँ। किन्तु जब वह यहाँ होती है, तो इन्हीं टूटी-फूटी दीवारों के कोनों से हँसी के रंगीन फव्वारे फूटने लगते हैं। पर फिर भी मैं सोचता हूँ कि मैंने उसे अभावों के संसार में लाकर कौन सा पुण्य किया? इसीलिये मैंने एक अन्य आत्मा को संसार में आने से रोक दिया। मुझे वह रात के समय अपने ही सिर के ऊपर सितारों के प्रकाश में मँडराती हुई नजर आया करती थी। लगता था जैसे वह इस घर में आने के लिये छटपटा रही है। मुझसे न रहा गया। मैंने उससे पूछा 'तू इस पीड़ा की पृथ्वी पर क्यों आना चाहती है? यहाँ तेरे लिये क्या रक्खा है, अच्छा हो यदि तू इसी प्रकार प्रेत बनी हुई तारों की छाँह में भटकती रहे। न, न, तुझे यहाँ लाकर मैं संसार के कष्टों में चार चाँद न लगाऊँगा।' वह छटपटाती रही, मैंने उसकी एक न सुनी। जो होना था सो हुआ। कमला बिस्तर पर पड़ गई। इसीलिये उन्हें मायके भेज दिया। सेहत सदा के लिये टूट गई है।"

लज्जा और क्लेश से तारा का सिर झुक गया। आज तक कभी किसी पुरुष ने उससे इस प्रकार खुल कर बात न की थी। वह उस वर्ग की नारी थी जहाँ हँसी-मजाक हुआ करता है, फ़िकरेबाजी की आतिशबाजियाँ, ताने-तिश्नों की चिनगारियाँ उड़ा करती हैं, पर बस, यहीं तक है व्यक्ति-व्यक्ति का सम्बन्ध। दिल ने क्या कभी दिल की बात पूछी है?

उसके मुख से प्रश्न निकल पड़ा, "तुम तो एक लेखक हो, पत्रकार हो, कमाते हो, फिर क्यों यह कष्ट?"

"हाँ, पत्रकार हूँ, लेखक हूँ या नहीं, कह नहीं सकता।

वेतन है सवा सौ रुपये। इस मास की तीस को यह नौकरी भी हाथ से गई। उस समय अँग्रेजों के शासन-काल में, जब कि हर पढ़ा लिखा व्यक्ति हिंदी और हिन्दी के लेखक की खिल्ली उड़ाने में अपनी शान समझता था, मैंने अपनी लेखनी उठाकर शपथ ली थी कि, आज से एक भी शब्द अँग्रेजी में नहीं, हरगिज नहीं। जो कुछ भी मुझे कहना है, वह हिन्दी में कहूँगा, अपने देश की गँवार, अशिक्षित, गरीब जनता के लिये, जिन पर अँग्रेजी की चिकनाई चढ़ी नहीं है। उस समय क्या मैंने सोचा था कि मेरी सन्तान को रोटी के टुकड़े के लिए तरसना पड़ेगा? एक दिन मैंने साहित्यकार होने का स्वप्न देखा था किन्तु अब मैं केवल एक पत्रकार होकर रह गया हूँ। मैं हूँ एक असफल लेखक। मुझ में ही कुछ कमी है। गरीबी को दोष क्यों दूँ। हृदय के न जाने किन दूर तटों से प्रेरणा आँधी-पानी के समान उमड़ आती है और फिर संसार की कोई भी शक्ति उसके बहाव को रोक नहीं सकती। अभाव, बन्धन, गरीबी, निरक्षरता के सूखे पत्तों की क्या हस्ती रह जाती है, जिस दिन मानव के मस्तिष्क में विचारों का बवण्डर उठ खड़ा होता है। कबीर के पास कौन सा मानपत्र था? शेक्सपियर किस विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था? कीट्स के पास जीवन की कितनी घड़ियाँ थी? कार्ल-मार्क्स, आइन स्टाइन घर से बेघर हुए। यह गरीब बंजारे, जिप्सी, किस भूमि के आँचल में मुँह छिपाकर कहते 'ओ मेरी मातृभूमि'। खैर, जाने भी दो। अरे, तुम्हारा प्याला तो खाली है। लो, और पियो। तीस तारीख़ तक तो चाय पिला ही सकूंगा। उसके बाद, नौकरी छूट जाने पर यानि मुक्ति पाने पर शुद्ध शीतल जल पिलाऊँगा और पीऊँगा। क्या तुम बता सकती हो, वह कौन सी शक्ति है कि जो व्यक्ति को कवि या लेखक बनाती है?" उसने एकाएक पूछा।

"प्रेरणा," तारा ने उत्तर दिया।

"और प्रेरणा क्या है? लेखक में दो शक्तियों का होना आवश्यक है, अनुभूति और विचार। नेगेटिव और पॉजिटिव तारों के समान इन दोनों शक्तियों के परस्पर संघर्ष से, प्रेरणा की बिजली चमक उठती है। इसी विद्युत को वाक्यों में बाँधकर, जो व्यक्ति मानव-हृदय की गलियों को आलोकित कर दे, वही है लेखक।"

"तुमने इधर क्या लिखा? क्या तुम जानते हो कि एक नवीन रचना सुनने के लालच में ही मैं इतनी दूर, बिना किसी को कहे-सुने, चोरी से चली आई हूँ?" तारा ने कहा।

"क्या लिखा है मैंने! यह भी कोई लिखना हुआ। न जाने कब वह अक्षरों की पंक्ति मेरी लेखनी से अनजाने फूट पड़ेगी जिसके ऊपर मैं अपने जीवन का एक-एक वर्ष लुटा देने को बैठा हूँ। किन्तु, फिर भी यदि मैंने कुछ लिखा भी है तो भी मैं इस समय कुछ न सुनाऊँगा। यह क्षण क्या मैं यूँ ही हाथ से जाने दूँगा। इतनी आसक्ति रहते हुए भी, यह मेरा एक-एक क्षण अपने ज्योतिर्मय पंखों पर उड़ा जा रहा है, फिर कभी वापिस न आने के लिए। अच्छा तुमने क्या-क्या लिखा? यही दो-एक वस्तुएँ हैं जिन पर मेरे जैसे मस्त आवारा लोग जीवित हैं, एक कहानी, एक गीत, एक विचार। मैं कवि से कहानीकार हुआ, कहानीकार से आलोचक और अब शायद केवल एक पत्रकार हूँ। सोचता हूँ यह कैसे हुआ। मैं तो लेखक का दिल और उसकी लगन लेकर पैदा हुआ था। लो, मैं तो अपनी ही बात कहने लग गया। हाँ, तो बताओ क्या-क्या लिखा?"

"इधर तो कुछ नया लिखा नहीं है। हाँ, एक गीत लिखा था, तुम्हें वह भेजा तो था।"

"अच्छा वह गीत 'माँझी रे' ?" उसने कहा और एक अत्यन्त कटु व्यंग-भरी मुस्कुराहट बल खाती हुई सर्पिणी के समान उसके चेहरे पर थिरक उठी, और फिर उसके हृदय के पिटारे में जाकर छुप गई।

"क्यों, इसमें हँसने की क्या बात ?" तारा ने पूछा। उसे लगा जैसे किसी ने डंक मार दिया हो। इस व्यक्ति का स्नेह अमृत है, किन्तु इसका व्यंग, उफ़, यह तो विष से भी अधिक कटु है, वह सोच रही थी।

"क्या तुम अपने जीवन में कभी किसी माँझी से मिली भी हो ? नहीं। मिलने का प्रश्न ही क्या, कभी इस जानवर की सूरत भी न देखी होगी। नौका-विहार तो किया होगा पर क्या कभी उसके साथ बैठ कर मोटी रोटी और मछली खाई है ? साथ बैठकर खाने की बात अलग, क्या कभी यह जानने का भी यत्न किया है कि यह ग़रीब माँझी कैसे गुज़ारा करता है ? किस गन्दी, टूटी झोपड़ी में रहता है ? बरसात में वर्षा के थपेड़ों से, शीत-ऋतु में हवा की बर्छियों से अपनी रक्षा कैसे करता है ? उसके रोगी बच्चों को दवाई मिलती है या नहीं ? अठन्नी फेंकते समय उसकी ओर देखा भी न होगा। क्यों, है न ऐसी बात ? न···न···न···ऐश्वर्य के दर्पण में संसार की रंगीन झाँकियाँ देखने से काम न बनेगा। जिस दिन तुम अपने मीनार की ऊँचाई से उतर आओगी और जिस दिन तुम गली के नुक्कड़ पर छोटी, धुँधली, टिमटिमाती हुई चाय की दूकान पर बैठकर चाय पीते-पीते ग़रीबों की दुनिया में डूब जाओगी या जिस दिन नदी के किनारे मल्लाहों के गीत तुम्हें अपनी अट्टालिका से खींच लायेंगे और कोई बन्धन या निमंत्रण, मित्र या चलचित्र तुम्हें

रोक न पायेंगे, उस दिन शायद तुम लेखिका बन सको। तुम लोगों के लिये साहित्य-रचना भी एक फैशन है, कलाबाजी है, तीन इंच के एड़ीदार जूते पर खड़े रहने की साधना है। अरे, यह क्या ?"

तारा सिर झुकाये चुपचाप बैठी थी। उसके हृदय में केशव का एक-एक शब्द तीर के समान चुभ रहा था। इस व्यथा को लेकर वह अपना और अपने गृह का कौन सा उपकार कर रही है। अपनी गृहस्थी के सुरक्षित घेरे में, दीपक की ज्योति में, शृङ्गार की रंगीनियों में, इत्र की फुहार में, पार्टियों की जगमगाहट में वह क्यों नहीं अपने जीवन को डुबोकर निश्चिन्त हो जाती। आज वह जो अपने मान-सम्मान की लकीरों को अनजाने ही लाँघ कर चली आई है और गली-गली मारी-मारी फिर रही है, इससे कौन सुख मिलने वाला है। जादू की छड़ी के समान उसी की लेखनी उसको अपने घेरों से कितनी दूर ले आई है और न जाने किस खाई में जाकर पटक देगी। उसकी आँखें भीग गई थीं।

युवक की दृष्टि से यह व्यथा छुपी न रही। उच्चवर्गीय नारियों के प्रति जो कटुता और उपेक्षा उसके हृदय में कोहरे के समान छाई हुई थी वह एकाएक साफ हो गई। मन में करुणा और स्नेह उमड़ आया। इस उद्वेग से वह इतना अभिभूत हो गया कि कुछ कह भी न सका। मूर्ख बना बैठा रहा।

"यह सब तुम मुझे क्यों सुना रहे हो ?" तारा ने कहा, "क्या मैं यह नहीं जानती कि जो कुछ भी मैंने लिखा है वह साहित्य नहीं। दो दिन पूर्व की ही रचना पढ़ कर मेरा सिर एकान्त में भी लज्जा से झुक जाता है। दिल चाहता है चुल्लू भर

पानी हो तो डूब मरूं। हर अक्षर देख कर लगता है, यह नहीं है वह जो मैं कहना चाहती हूँ। किन्तु इतना सत्य है कि साहित्य-रचना मेरे लिये मनोरंजन नहीं। इतना कष्ट, इतनी जलन, माँ बनने पर भी नहीं हुई थी। एक-एक अक्षर जैसे दिल और दिमाग़ की नाड़ियों को काट-काट कर निकलता है। किन्तु न लिखना मेरे लिये ऐसा ही है जैसे मृत्यु या पागलपन। मेरे विचार मर कर भूत-प्रेत बन जाते हैं और मस्तिष्क के खण्डहरों में वह शोर मचाते हैं कि नसें फटने लगती हैं। उस अवस्था का ध्यान आते ही दिल दहलने लगता है। न···न···न···मुझे लेखिका बन कर दोनों हाथों से यश बटोरने का ज़रा भी लालच नहीं। मुझे क्या कोई शौक है, पर सृजन स्वयं श्राप बन कर मेरे पीछे लगा हुआ है। यदि यह अभिशाप ही लेकर मुझे पैदा होना था तो भगवान ने मुझे एक नारी क्यों बनाया और फिर एक बड़े घर की नारी।"

उसके सौन्दर्य ने नहीं, भीनी-भीनी इत्र की सुगन्ध ने नहीं, पर उस रमणी की व्यथा ने केशव के हृदय को मथ डाला। व्यथा जीवन की सबसे गहरी अनुभूति है। मानव के दुःख ने ही विश्व के शिकारे में अशान्ति उत्पन्न की है, उसे नई दिशा की ओर मोड़ा है।

"न···न···दुखी न हो तुम," वह बोला, "क्या इतनी व्यथा सह सकूंगा, वह भी अपनी नहीं, तुम्हारी ? मनुष्य के लिये अपना दुःख, दुःख का कारण नहीं; वह दूसरे की पीड़ा है जिसकी परछाईं प्रेत के समान सदा उसका पीछा किया करती है। मनुष्य का अपना सुख कभी सुख बन कर नहीं टिका; जो सुख उसके द्वारा दूसरे के जीवन में आया है, वही उसे शान्ति और सन्तोष की गहराइयों में ले जाता है। फिर भी मनुष्य अपने ही दुःख की

छाया से भागता है और अपने ही सुख की मरीचिका के पीछे दौड़ता है। तभी तो न उसे दुःख से छुटकारा मिलता है, न सुख की प्राप्ति होती है। संसार इतना छोटा सा सत्य क्यों नहीं समझ पाता, यही आश्चर्य है।

"तुम चाहे न मानो, किन्तु इस समय मन में यही चाह रहा हूँ, कि आज तक मैंने जो कुछ भी रचनात्मक शक्ति संचित की है, वह किसी जादू के प्रभाव से तुम्हारी हो जाये। जादू-टोना क्या है? जो भावना हृदय की तहों से उमड़ कर आती है, उसका चमत्कारिक प्रभाव, यही है जादू। भावना की कशमकश भाग्य के सितारों से है, उसका सारा संघर्ष उन्हीं से है। मनुष्य के दिल की बेचैनी चाँद-सितारों का रुख़ बदल देती है।

"मैंने तुमको कहानी-लेखिका बनाया है। क्या तुम कह सकती हो नहीं? मेरे पास जो कुछ भी साधना या अनुभूति है, वह सब जिस दिन तुम्हें सौंप दूँगा, उस दिन मुझे एक असहनीय भार से मुक्ति मिलेगी। जिस दिन धूल-भरे गली-कूचों में, टिमटिमाती हुई बस्तियों में, तुम्हारी कहानियाँ सुनी-सुनाई जायेंगी, उस दिन मेरे मन में यह दुःख न रहेगा कि मैं लेखक का हृदय लेकर भी लेखक क्यों न हुआ।"

तारा ने चकित होकर देखा। लगा जैसे किसी ने युवक के हृदय-कक्ष में बिजली का बटन दबा दिया हो। प्रकाश की झीनी रेखा उसकी पलकों की चिक से छन कर, छलक कर, उसके चेहरे पर गिरी और बुझ गई।

समवेदना की डोर से खिंचता हुआ केशव उस युवती के निकट···अति निकट आ गया था। वह भूल गया कि उसकी

उँगलियाँ अनजाने ही उसके केशों को प्यार कर रही हैं और वह युवती अलौकिक सुन्दरी है……।

वह चली गई।

केशव अँधेरे में ही बैठा रहा, सोचता रहा। यह क्यों आई थी? क्या चाहती है मुझसे? यह नारी जो इस कक्ष में इतनी वेदना बिखेर गई है, उससे मेरा क्या रिश्ता है? हृदय के अदृश्य तन्तु शारीरिक सत्ता को न मान कर अपने रिश्ते स्वयं खोजा करते हैं। यह तन्तु अति कोमल और सूक्ष्म हैं, किन्तु यह सम्पूर्ण मानवता को अपने घेरे में बाँधे हुए हैं। कब, किसका, किससे रिश्ता निकल आये, कौन जाने। कभी एक छोटे स्टेशन के प्लैटफ़ार्म पर लालटेन के फीके प्रकाश में प्रेत की छाया के समान चमक कर खो जाने वाले किसी व्यक्ति को देख कर लगता है, यही था वह, जिसकी मुझे अभी तक तलाश थी। इसीलिये शायद, उसने सोचा, जब मैं अपनी बेटी की ओर देखता हूँ तो पल भर पहचान नहीं पाता। अचानक सोचता हूँ, मैं कौन हूँ इसका, यह कौन है मेरी, यह मुझसे क्या चाहती है। इसीलिए तो मुझे कहीं चैन नहीं मिलता, लगता है जैसे यह घर स्टेशन है, गाड़ी आने वाली है। दिल की धड़कन ही गाड़ी की गड़गड़ाहट बन जाती है। मन में दर्द सा उठता है, लगता है, अब जाना है, जाना है, कहीं दूर जाना है। "कहाँ जाना है मुझे? कहाँ है मेरी मंज़िल? बता ओ प्रेयसि," उसने अपनी आत्मा का आँचल खेंच कर पूछा।

अचानक उसे ध्यान आया कि संध्या न जाने कब की बीत चुकी है। उसने लालटेन जलाई। इस उजड़ी टिमटिमाती हुई बस्ती में एक उसी का मनहूस घर था जहाँ ग़रीबी की भिखारिन

सिर पर बिजलियों का ताज पहन कर इन्सान को मुँह नहीं चिढ़ाती।

बत्ती जल उठी। घर के भूत-प्रेतों ने छाया रूप में आकर दीवारों पर डेरा जमा दिया। "बंजारों का डेरा" अरे, कहानी तो अभी अधूरी पड़ी है। कल सम्पादक को देनी है, उसे एकाएक याद आया। उसने अपनी फ़ाइल उठाई, कलम में स्याही भरी, सिगरेट की डिबिया खोली...ख़ाली थी। ख़ैर, उसने घटनाओं की डोरों को फिर से पकड़ में लाने के लिये कहानी पढ़ी, दिल में धक्का सा लगा। कहानी पूर्ण होने से पूर्व ही मर चुकी थी। विषय ही खोखला है। शैली का जादू कहाँ तक काम करेगा। किन्तु सम्पादक को क्या उत्तर दूँगा? इसी को भेज दूँ। दस रुपये तो मिल ही जायेंगे। नहीं, न···न···कदापि नहीं। कहीं वह इस लोभ के जाल में फँस न जाये, उसने उन काग़ज़ों को फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। फिर भी मन शान्त न हुआ। उसने उन बिखरे हुए पुर्ज़ों को इकट्ठा किया और दियासलाई से आग लगा दी।

केवल एक कहानी, एक कविता, नहीं, एक ज्योतिर्मय अक्षर को असत्य की तहों से निकाल लाने के लिए न जाने कितने लेखक मर मिटे हैं, कितने कवि दिल और दिमाग़ खो बैठे हैं, कितने विचारक घर को आग लगा कर राह की धूल में निकल पड़े हैं।

"कबिरा खड़ा बजार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ॥"

यही वह सोचता रहा जब तक कि आग बुझ न गई।

... ...

वह अपने नन्हें से शृङ्गार-लोक में दर्पण के सामने बैठी हुई रेशमी केशों पर हाथी-दाँत की कंघी फेर रही थी। वह रूपवती है किन्तु उसे अपने रूप का मोह कभी नहीं रहा। किसी पुरुष के मुख से अपने सौन्दर्य की प्रशंसा सुनने पर उसे सुख नहीं मिलता, क्योंकि इतना तो वह समझती है कि पुरुष उसी नारी के रूप का मोह करता है जो अल्हड़ है, मूर्खा है; जिसकी बुद्धि उसकी शोभा से कम है। जहाँ ज्ञान का तेज है वहाँ रूप स्वयं अपनी नजरों में कितना ओछा और फीका पड़ जाता है। न······न······मुझे इस शृङ्गार से क्या प्रयोजन ? मैं रूपवती हूँ क्योंकि मेरी कला फीकी है; जिस दिन मेरी कला सूर्य की किरण सी चमक उठेगी, उस दिन रूप स्वयं ही छाया के समान आत्मा में सिमट कर मिट जायगा। मिट जाये यह सभी, यह शरीर, धन, वैभव, मान-सम्मान। मुझे किसी की चाह नहीं। इच्छा है केवल एक ही वस्तु की। वह है अक्षर···अक्षर···एक अक्षर···मोती सा, नक्षत्र सा···नहीं···रेडियम के कण सा······।

उसने क़लम उठाई, रख दी, गहरी सोच में डूब गई। जिस दिन उसकी लेखनी की नोक से वर्षों के परिश्रम और खोज के बाद—एक, केवल एक अक्षर फूट पड़ेगा, रेडियम के नन्हें से कण के समान शुभ, प्रकाशमान और कल्याणकारी, उस दिन उसके वैभव का, उसके जीवन का या उसके नाम का ही क्या महत्व रह जायेगा। उस समय वह अपनी सब आशा-निराशा द्वेष-द्वन्द्व, मान-सम्मान के चिथड़ों को समेट कर, अहंकार की लाठी टेकती हुई अमर-यात्रा के लिये चल पड़ेगी, जीवन की सराय को छोड़ कर दूर, पीछे···।

घड़ी बज उठी, टन…टन…टन। तारा चौंक पड़ी। ओह, चार बज गये? वह कब से लिखने का यत्न कर रही है, किन्तु आज एक पृष्ठ भी तो पूर्ण न हो सका। अक्षर लेखनी की नोक तक उमड़ आते हैं, और पारे की तरह सट से फिसल कर खो जाते हैं, पकड़ में नहीं आते। उसके मस्तिष्क के शीशों में पारों की क़तार सी घूमने लगी, सर्र…सर्र…। उसने एक को स्पर्श किया नहीं कि वह फिसला, डूबा, लुप्त हुआ। अजीब आँख-मिचौनी मची थी। वह तंग आ गई।

अपनी उलझन को दूर करने के लिये उसने नई मासिक-पत्रिका उठाई। पृष्ठ उलटने लगी, एक…दो…तीन…उँह, कैसी ऊटपटाँग कविता है, न सिर न पैर। ओ कवि! तुझे यह क्या सूझी? भला यह भी…उँह, मुझे क्या। यह लेख किसका है? ओहो, अब आप भी हो गये लेखक, मिस्टर……? मैं कहती हूँ, आपको विद्यालय में कुछ काम नहीं है क्या? हर मास्टर अपनी उँगलियों में एक लेख दबाये, लेखक बना बैठा है। सम्पादक, तुमको क्या और कोई न मिला? मुझे क्या! मैं क्यों अपनी कहानी दूँ? आपको गरज हो तो…अरे…यह क्या? अचानक एक शीर्षक ने उसका ध्यान आकर्षित किया। किसने लिखी है यह कहानी? ओह…केशव।

उसने एक साँस में ही कहानी पढ़ डाली। कहानी क्या थी आग की लपट थी। अन्तिम वाक्य पढ़ कर उसका दिल धक् धक् करने लगा। पत्रिका हाथ से छूट कर गिर पड़ी। आह! यही बात वह स्वयं कई दिनों से कहना चाह रही थी जो आज इसने कह डाली। हाँ, यही…यही…। हाय, मैं क्यों न कह पाई। केशव ने मेरी लेखनी का अक्षर छीन लिया। मेरा रेडियम चुरा

लिया, ओह...मेरा रेडियम, चोर···चोर·····।

झूठा, बेइमान! उसने मुझसे कहा था, मैं लेखक नहीं, केवल एक पत्रकार हूँ। क्या उसने मुझ पर व्यंग किया था? छिः, कितना ओछा व्यंग है। क्या यह एक व्यक्ति को शोभा देता है? "मैं लेखक नहीं हूँ"···हुँ···ऐसी ही बात है तो पत्रिका में यह कहानी क्यों प्रकाशित की, और फिर अपने नाम से? डूब मरो तुम। ईर्ष्या और द्वेष से पीड़ित होकर वह रोने लगी। वह हार गई थी, बुरी तरह हार गई थी।

'तुम लोगों के लिये साहित्य-रचना एक फ़ैशन है', उसे याद आया। केशव के मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द आज उसे डंक मारने लगा। इसी व्यक्ति ने अपने मित्र से जाकर कहा, कि वह लेख जो मेरे नाम से प्रकाशित हुआ था, उसने लिखा था। मैं अस्वस्थ थी। उसने लिख दिया तो क्या हुआ। कम से कम कहना तो नहीं चाहिए था, नीच···। तारा की जिह्वा, उसका कंठ, उसका सारा शरीर कड़वाहट से भर गया। उस युवक के स्पर्श की याद बिजली की भीगी हुई तार की करंट बन कर उसे काटने लगी। उसकी उँगलियों ने उसके गालों को पोछा था, जब वह आँसुओं से भीग गये थे, उसके केशों को अनजाने ही स्पर्श किया था। छिः, वह उस युवक के सामने रोई थी जो इतना कटु है, जिसकी रूमाल गन्दी है, जिसका कॉलर फटा है, जिसकी कहानी···ओह! दावात झटके से उलट गई। काग़ज़ पर धब्बे फैल गये। उसके मस्तिष्क की फिरकी में उस युवक की गन्दी रूमाल, फटा हुआ कॉलर, कहानी के पुर्जे, स्याही के धब्बे, गोल-गोल नाच कर उसका मज़ाक उड़ाने लगे।

टेलीफ़ोन की घंटी, टनन·····न···न···। तारा ने रिसीवर

उठाकर कहा "हैलो" और उधर का स्वर सुनते ही उसका दिल बैठ गया। केशव की आवाज़ थी, परेशानी और घबराहट से उलझी हुई। वह इस व्यक्ति का स्वर तक सुनना नहीं चाहती, नहीं···वह इस युवक से ऊब गई है। बुरी तरह ऊब गई है। वह अपने जीवन से······। अरे, उसने मेरे रुपये भी वापिस नहीं किये···पूरे एक सौ बीस···नहीं चालीस···धूर्त्त······।

केशव बड़ी तेजी और अकुलाहट में, टूटे-फूटे शब्दों में, कुछ कह रह रहा था। उसकी बेटी जो कुछ दिनों से ज्वर से पीड़ित थी, आज अचानक, अभी-अभी मर गई है। वह शव को लेकर श्मशान आ रहा है। घर में उसकी पत्नी अकेली है, मूर्च्छित पड़ी है। वह तारा से पूछ रहा था कि क्या वह इस समय उसके घर जाकर उसकी स्त्री की देख-भाल कर सकेगी जब तक वह श्मशान से लौट न आये।

तारा ने सुना। उसके मुख से निकल पड़ा, "बड़ा खेद है मुझे! यह कैसे हुआ? क्या हो गया अचानक? मुझे पूरी सहानुभूति है। किन्तु···मैं इस समय तो आ ही नहीं सकती। मेरे घर में निमंत्रण है। शायद कल, नहीं······नहीं, कल मुझे एक······अच्छा देखूँगी···आज या कल······।"

दूसरी ओर से खट् हुआ, टेलीफ़ोन बन्द हो गया। तारा के अपने ही शब्द लौट कर उस पर टूट पड़े। वह विचलित हो उठी। उँह, तो मैं क्या करूँ? मुझसे मतलब···उसकी स्त्री वह जाने···उसकी बेटी ओह, तारा का सिर चकरा गया। उसका अंग-अंग पत्तों के समान थरथराने लगा। उँगलियाँ सहारे के लिये छटपटाईं और वह कुर्सी की नोक से टकराती हुई भूमि पर गिर पड़ी।

किसी ने उसे उठा कर पलँग पर लिटा दिया था। यह था उसका प्रेमी महेन्द्र कुमार।

शयन-कक्ष की खिड़की पर पड़े हुए, झीनी, नीली जाली के पर्दे फड़फड़ा उठे, फिर पंख समेट कर, साँस रोक कर रुक गये। साँझ की पीली किरण जाली में झिलमिलाई···फीकी पड़ी···बुझी···। अँधेरा छा गया। शृङ्गार-मेज पर पल भर हल-चल सी हुई। पाउडर का डिब्बा उलट गया, इत्र की शीशी झन्न से गिरी, टूटी······फिर सन्नाटा······। कमरे में भीनी-भीनी सुगन्ध की फुहार उड़ने लगी।

रात के बारह बज चुके थे। घर भर नींद में डूबा हुआ था। एक लैम्प की टिमटिमाती हुई रौशनी के दायरे में बैठी हुई तारा अपने लिखे हुए एक-एक कागज को पढ़ कर टुकड़े-टुकड़े करके टोकरी में फेंक रही थी। नहीं, वह लेखिका नहीं, न वह होना चाहती है। ऐसी साधना से क्या जिसमें न यश है न नाम है, न धन है न सम्मान। फिर यह जलन किस लिए ? यह बेचैनी किस लिये ? इतने वर्षों के परिश्रम के पश्चात उसे क्या मिला ? व्यंग के छींटें···कटु आलोचना···ऐसी कि लगे किसी ने काट लिया हो, ओह···।

उसके सपने टुकड़े-टुकड़े होकर रद्दी की टोकरी में समा रहे थे। उसके सपने···। कभी उसने लेखिका, नहीं महान लेखिका बनने का स्वप्न देखा था। ओ मेरे स्वप्न, विदा······विदा······।

उसने निश्चय कर लिया। कल से वह स्वतन्त्र होगी।

नहीं, वह नौकरी करेगी, पैसा बटोरेगी, मोटरों पर घूमेगी, रात के एक बजे तक क्लब में ताश खेलेगी, सिनेमा के चक्कर काटेगी, पुरुषों को उँगली पर नचायेगी। रंगीन उड़ती हुई साड़ियाँ···हीरों के सेट···चमकीली चप्पलें···ताश के पत्ते···इत्र की शीशियाँ······उसका मस्तिष्क सर्कस के रंगीन चक्र के समान घर्र···घर्र···घर्र घूमने लगा।

हवा का झोंका आया। काग़ज़ फड़फड़ाये, उड़े, बिखर गये। उसके बिखरे हुए स्वप्न···उसने उन्हें उठाया, और एक-एक कर फाड़ना शुरू किया। फ़ाइल ख़ाली हो गई, टोकरी भर गई। जब कुछ न बचा तो उसने अपने खुले, उलझे केशों को नोच लिया। हाय, कहाँ है वह मेरा अक्षर, रेडियम का अक्षर, जिस पर मैं अपने जीवन की सारी ख़ुशी लुटाने को पागल सी मारी-मारी फिरती थी, उसने रो-रो कर सितारों से पूछा।

··· ··· ···

उसकी कन्या उसे छोड़कर जा चुकी है। मैंने एक छट-पटाती हुई आत्मा को संसार में आने से रोक दिया, दूसरी भी मुझे त्याग कर चली गई, सितारों की छाँह में, बहिन से मिलने के लिये। बेटी तूने मुझको दण्ड दे दिया। हाय, मैं कहीं का न रहा। कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? केशव की आँखें भर आईं।

आज वह संसार में बिल्कुल अकेला है। उसकी पत्नी मायके में है। पहली जनवरी से उसकी नौकरी भी छूट गई है और आज पाँच को मालिक-मकान ने उसे घर से निकाल दिया

है। हुँ, निकाल दिया, अच्छा हुआ। बेटी की मृत्यु के पश्चात् गृह की परछाइयाँ प्रेत बन कर काटने को दौड़ती थीं। कन्या की याद आते ही उसका दिल बैठने लगा···डूबने लगा···नाँव की तरह, उदासी के समुद्र की अनन्त गहराई में।

घर के सीलन-भरे, दबे, घुटे, घेरे को छोड़ कर वह अंधे की लाठी के समान डगमगाते, थके-टूटे पाँव लेकर पथ पर चल पड़ा है। वह संसार के उस छोर पर पहुँच गया है, जो समाज के बन्धन से मुक्त है, विधान की जंजीरों से परे है। इस तट पर वही व्यक्ति पहुँच सकता है जिसके मन में पीड़ा है, जिसकी जेब खाली है। अब तो जिधर चल पड़े वही राह है, जहाँ रुक गये वही सराय है। जो लौ दिल में जल उठी वही लालटेन है। खुले, उजड़े मैदान में, तारों की छाँह के नीचे पड़े हुए मन ने जो बात कह दी, बस कह दी, वही···वही है सत्य···वही है अनन्त की प्रतिध्वनि·········।

"बाबू! एक प्याला चाय······?" किसी ने आवाज़ दी। केशव चौंक पड़ा। उसे ध्यान आया कि अपनी ही धुन में चलते-चलते वह कितनी दूर निकल आया है। नन्हीं-नन्हीं बूँदा-बाँदी होने लगी है और उसका कोट कुछ भीग गया है। हवा का झोंका आया, शरीर में कँपकँपी सी हुई। वह रुका, आगे बढ़ा, फिर रुक गया। उस ने जेब में हाथ डाला...खाली थी। उसका दिल धक से हुआ और साथ ही बर्फ़ सी ठण्डी बूँद उसके माथे पर टप् से टपक पड़ी।

"बाबू, भीग क्यों रहे हैं? आइये न अन्दर। आप तो ईद का चाँद हो गये। आइये, आइये," बूढ़े ने एक मेज़ और कुर्सी पोंछते हुए कहा।

"हुज़ूर, शक्कर तो आप लेंगे नहीं?" मियाँ रमजान ने मुड़ कर पूछा।

"नहीं, बड़े मियाँ, आज चाय नहीं पियेंगे हम। हजरतगंज से कॉफी पी आये," केशव बोला।

"हुज़ूर, कॉफी तो आप पी आये, जरा मेरे हाथ की चाय का भी मजा लीजिए। पैसे न हों, मत दीजिएगा। आप से न जाने कितना ले चुका हूँ। खुदा आपकी जान को सलामत रक्खे।"

केशव एक कुर्सी पर, जिसकी रीढ़ की हड्डी टूट चुकी थी, बैठ गया। इसी कोने में, इसी कुर्सी पर बैठ कर उसने न जाने कितने पृष्ठ लिखे हैं। उसे कल ही एक कहानी लिख कर आकाशवाणी को देनी है। उसने अपनी जेब से कागजों का पुलिन्दा निकाला और पेन्सिल से लिखने लगा। इस कहानी के पच्चीस रुपये, और उस लेख के पन्द्रह, बस काफी है। वह दो-चार दिन में देहली आ सकेगा। वहाँ नौकरी न मिली तो···? उँह, कोई परवाह नहीं। उसका मित्र धीरेन्द्र उसे दो रोटियाँ रोज और सोने के लिये चारपाई तो दे ही देगा। कुछ दिन ऐसा ही सही, फिर देखा जायगा। किन्तु, किस प्रकार की नौकरी? क्लर्की या बाबूगीरी? नहीं, नहीं, साहित्य की लेखनी से जो पुष्प-प्रसाद मिलेगा, वही मुझे अभीष्ट है। केवल उसी कमाई पर मेरा अधिकार है।

आज के युग में यदि लेखक भी चकाचौंध करती हुई चमक के चक्र में नाचने लगा तो फिर मानव को राह कौन दिखायेगा, उसने सोचा। आह, कितना अनोखा युग है जिसने चन्द्र की

रचना कर उसे एक कन्दुक के समान अन्तरिक्ष में उछाल कर फेंक दिया है। अरे, विज्ञान की उड़ान कवि की कल्पना को कितना पीछे छोड़ गई है। "स्पुत्निक" के चमत्कार के सामने साहित्य हार गया है। नहीं···नहीं···मैं इसे अपनी पराजय नहीं मानता, कदापि नहीं। मैंने माना कि अब तक जो कुछ भी मैंने लिखा है, वह पुराना हो गया है; मर गया है, मर जाने दो। मृत्यु सृजन का द्वार है। मैं लिखूंगा; उस युग के लिये लिखूंगा, उसके लिये मर मिटूँगा जिसने सितारों के स्वप्न-लोक में जाने के लिये आलोक-पथ खोल दिया है।

चाय आ गई। उसने एक सिप लिया। उसके वक्ष के हिम-कक्ष में धीमी-धीमी अग्नि सुलगने लगी।

"आह, क्या बात तुम्हारी चाय में बड़े मियाँ", केशव बोला।

"बाबू! यह आपकी इनायत है, लेकिन ठण्ड भी क्या ग़ज़ब की है। उँगलियाँ बर्फ़ हुई जा रही हैं।" रमजान ने अपने फटे-पुराने कोट में ठिठुरते, सिकुड़ते हुए कहा, "अच्छा बाबू! चाँद में आजकल कैसा मौसम होगा, सर्द या गर्म? सुना है कि रूस ने ऐसा हवाई-जहाज बनाया है जो इन्सान को चाँद तक पहुँचा सकेगा। जानवर तो सैर कर ही आया। बचपन में हम कहानियों में पढ़ा करते थे, चाँद की सैर, सितारों की दुनिया, परियों के उड़न-खटोले। यह सपना नहीं रहा। सब सच हो गया। बाबू! आप इतनी प्यारी कहानियाँ लिखते हैं, क्या कभी आपने सितारों की दुनिया पर कुछ लिखा है? एक ऐसी कहानी लिखिये कि पढ़कर आँखों में आँसू आ जाएँ, जिसमें बाप और बेटे की जुदाई का किस्सा हो। बेटा सितारों की दुनिया की खोज में चल देता है। बाप अकेला रह जाता है। नौजवान

हजारों मील दूर आसमान में पहुँच कर एक सितारे पर उतरता है। वह भी एक अजीब दुनिया है। वहाँ के राग-रंग में डूबकर वह अपना घर भूल जाता है। फिर एक दिन उसने सपने में अपने बाप को देखा। वह रोज रात को छत पर बैठ कर दूरबीन से सितारों को देखा करता था। उसे इस बात का दुःख न था कि उसका बेटा उससे जुदा हो गया। रंज इस बात का था कि उसने अपना फर्ज़ पूरा नहीं किया। खैर, तो सपना देख कर उसे अपने घर की याद आई और वह सितारों की दुनिया का भेद लेकर लौट आया। लेकिन जब वह पहुँचा तो बूढ़ा दुनिया को छोड़ कर जा चुका था। अच्छा बाबू, क्या पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में कभी मेल न होगा? देश का बँटवारा क्या हुआ कि औरत अपने शौहर से जुदा हो गई भाई बहिन से, माँ बच्चे से, और बाप बेटे से.........।"

वह रो पड़ा। उसकी आँखों से चाय की बूँदों के समान गँदले आँसू टपकने लगे। केशव को याद आया कि बूढ़े का बेटा और उसकी पत्नी उसे अकेला छोड़ कर पाकिस्तान चले गये थे। इधर महाजन ने उस पर नालिश कर दी है। काश! उसकी जेब में कुछ रुपये होते। उसका हृदय व्यथा से भर गया। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मैं इस बूढ़े का दुःख अपने कन्धों पर ले लूं। मनुष्य ऐसा कर क्यों नहीं पाता? नहीं, एक दिन यह भी हो सकेगा। मानव के अन्दर छुपी हुई अलौकिक शक्तियाँ एक-एक कर जागृत होंगी। जिस दिन मनुष्य अनजान पथिक की व्यथा समेट कर अपने हृदय में ले लेगा, उसे अपना बना लेगा, उस दिन उसका अपना कष्ट स्वयं तुच्छ और छोटा होकर सिमट जायेगा। इस विष को पराये के दुःख का नश्तर ही काट कर फेंक सकता है। मानव के दुःख का और कोई उपचार नहीं है।

केशव चौंक पड़ा। बूढ़ा कह रहा था, "हाँ, बाबू तो क्या आपने कभी इस बात पर ध्यान दिया है? इस पर कुछ लिखा है? सच तो यह है कि यह समाज भी अच्छा मजाक है, शतरंज का खेल है। जिनके हाथ में राज की बाग-डोर है, वे खिलाड़ी हैं, और हम गरीब, भूखे लोग हैं, काली, सफ़ेद गोटें, पिटने और पीटने के लिये।"

"ठीक कहते हो बाबा। शतरंज का खेल! यही बात समझने के लिये मैं यहाँ···अरे···तुम···तुम···यहाँ······?" केशव का दिल धक से हुआ। बात बीच में ही कट गई।

तारा, धुली, धवल, धोती में अपने रूप की ज्योति को समेटे हुए दूकान के अन्दर, ठीक वहीं, उसके पीछे खड़ी थी।

रमजान का पोपला मुँह खुला रह गया। आँखें आश्चर्य से फैल गईं। धीरे-धीरे उसके होठ सिकुड़ कर एक दूसरे पर टिक गये। उनकी दरार से ख़ुशी की किरण फूटी और उसकी आँखों की झिलमिली को झलका कर झट से बुझ गई।

"आइये, आइये," उसने कुर्सी पोंछकर प्यार से कहा।

तारा ने एक पल शंकित और डरी हुई दृष्टि से उसकी ओर देखा, फिर वह बैठ गई।

केशव का मुख क्रूरता से कस गया था। कुछ कटु स्वर में बोला, "तुम यहाँ क्यों आई? चली जाओ। मैं तुमसे फिर मिलूँगा, जाओ।"

वह कुछ बोली नहीं। बैठी रही। उसकी झुकी हुई पलकें भीग कर झिलमिलाईं। युवक ने पल भर उसकी ओर देखा।

मन में चोट सी लगी। नहीं, इस स्त्री की व्यथा वह क्या सहन कर सकेगा ?

"यह स्थान तुम्हारे लिये नहीं। किसी ने देख लिया तो ?" वह नम्र स्वर में बोला।

"देख ले, मुझे क्या अब इसकी चिन्ता है ?"

"यहाँ तक कैसे आई तुम ?"

"तुम्हें दूर से देखा, चली आई। मन से पूछना ही भूल गई कि मुझे यहाँ आना चाहिये या नहीं," उसने भोलेपन से कहा।

यह युवती इस समय अपना पूरा विश्वास मुझ पर रख कर चली आई है, मैं क्या इसके योग्य हूँ, केशव ने सोचा। इसके मान-सम्मान की रक्षा मैं कैसे करूँगा ? मैंने तो अपनी मर्यादा की रत्ती भर परवाह न की। इस गन्दी अँधेरी दूकान में यह बैठी है, और फिर मेरे जैसे बेकार, आवारा युवक के साथ। इसके घर के ही किसी व्यक्ति ने देख लिया तो यह कहीं की न रहेगी। उसका हृदय ममता और करुणा से भर गया।

रमजान ने चाय का प्याला मेज पर रख दिया था। तारा ने उस मोटे, पीले भद्दे, प्याले की ओर देखा। न जाने किन गन्दे, चिरकुट लोगों ने इसे अपने होठों से लगाया होगा। उसकी नाक घृणा से सिकुड़ गई। अचानक उसे लगा, केशव मन में उसकी हँसी उड़ा रहा है। उसने तेजी से उसकी ओर दृष्टि फेंकी, प्याला उठाया, और एक घूँट निगल गई।

बाहर पानी बरसने लगा था। वर्षा की बूँदें टीन की छत

पर टपक रही थीं, लेखक की लेखनी से टपकते हुए उदास, अश्रु-भरे अक्षरों के समान टप···टप···टप···टप······।

"मैंने तुम्हारे ऑफिस में कई बार फोन किया किन्तु वहाँ से कोई उत्तर ही न मिला," तारा ने कहा।

"हमारे ऑफिस की कुर्की हो गई है। मुद्रक का कर्जा चढ़ा हुआ था न। टंकण-मशीन, मेज़, कुर्सी, बैंच, स्टूल, कलम-दावात, पेन्सिल, स्याही की बोतलें, खाली या भरी हुई, काग़ज़ के टुकड़े, लिफ़ाफ़े, रद्दी पत्र-पत्रिकाएँ, सब का सब कबाड़ी उठाकर ले गया। एक पुर्ज़ा तक न छोड़ा। दुर्भाग्य से पिछली रात को मैं अपना पेन और अधलिखी कहानी के पर्चे मेज़ पर भूल आया था, कम्बख़्त ने उन्हें भी उड़ा लिया," केशव ने हँसते हुए कहा।

"किन्तु, तुम्हारी पत्रिका तो सहकारी-योजना थी न?"

"तभी तो जो कुछ मेरा था, वह भी, मेरा पेन, मेरी कहानी, मेरी भावना, मेरा विचार, मेरे अक्षर—सब का सब नीलाम में बिक गया," उसने कहा और वह हँस पड़ा।

तारा हँस न सकी। उसका दिल डूबने लगा था।

"तो···अब क्या करोगे?" उसने पूछा।

"लखनऊ छोड़कर चला जाऊँगा।"

"कहाँ?"

"जिधर मन ले जाये। न जाने किस देश की मिट्टी मुझे खींच कर यहाँ से लिये जा रही है।"

"फिर कब लौट कर आओगे ?"

"कभी नहीं।"

"क्यों ?"

"आज तक मैं आगे बढ़ कर कभी पीछे न लौटा। यहाँ से जाऊँगा तो अपनी नाँव को पूरी तरह जला कर कि पीछे लौट न सकूं।"

तारा की आँखें आँसुओं से डबडबाने लगीं। अपने कष्ट को छुपाने के लिये उसने पलकों की चिक गिरा दी।

केशव ने उन भीगी हुई पलकों की ओर देखा। अपनी नाँव को आग लगा कर मैं सदा के लिये यहाँ से जा रहा हूँ, यह निश्चित है। किन्तु ऐसा करना क्या मेरे लिये सरल होगा ? यही वह सोचने लगा।

"क्यों, क्या हुआ ?" उसने पूछा।

"कुछ नहीं" तारा ने सिर हिलाकर उत्तर दिया।

"तो फिर यह आँसू क्यों ? नहीं, नहीं, यहाँ नहीं। यह मोती क्या इतने तुच्छ हैं कि यूँ ही लुटाया करती हो। मन के अन्दर कहीं न कहीं ज्योति के स्रोत दबे हुए हैं, स्वच्छ और सुन्दर, जहाँ से यह अश्रु-कण उमड़कर आते हैं। हो सकता है, एक दिन यही कण, तुम्हारी आँखों से नहीं वरन् लेखनी से अक्षर बन बन कर टपक पड़े, टप...टप...।"

"क्या करूंगी इन्हें लेकर। मुझे कौन सा यश मिलने वाला

है ? कौन सी सफलता मेरी प्रतीक्षा कर रही है ?"

"यश हमारे स्वभाव के प्रतिकूल है। हम हैं असफल लेखक, तुम और मैं। कई सौ वर्षों के बाद समाज में एक महान लेखक उत्पन्न होता है, जो युग को नये आलोक से भर देता है। हम लोग ऐसी दो महान आत्माओं के बीच केवल विचारों का सिलसिला रखने के लिये हैं, जैसे दो ज्योति-पुंजों के बीच बिजली के तार। संसार इस जीवन में ही हमें भूल जायेगा। मरने के बाद कोई हमारा नाम भी न लेगा।"

"इसलिये तो मैंने सोचा था कि अच्छा हो यदि मैं जीवन की चमक-दमक में खो जाऊँ, अपने को भूल जाऊँ। मुझे असफलता की छाया से ऐसे भय लगता है, जैसे मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए व्यक्ति को मृत्यु के प्रेत से। न······न······मैं ऐसी कोई साधना करना नहीं चाहती कि जिसके अन्त में मुझे असफलता की परछाईं को गले लगाना पड़े। किन्तु यह भी क्या मेरे वश की बात है ?"

"असफलता से भय क्यों ? जीवन की मिट्टी में छुपा हुआ जो सुन्दर सत्य है, रेडियम के कण सा, उसी को खोजते हुए, निराश होकर, सिर में धूल डाल कर, किसी टिमटिमाती हुई सराय में मिट जाना संसार की सबसे बड़ी सफलता से कहीं ऊँचा है—वह सफलता जो सब कुछ देती है, धन, मान, सम्मान, किन्तु सत्य और सौन्दर्य नहीं। यह भेद मैंने पाया है दो दिन भूखे रहने के बाद, चाय का प्याला पीकर। न···न···मैं तुमको पथ से कभी गिरने न दूँगा। वह मेरी हार होगी, तुम्हारी नहीं, क्योंकि मैंने ही तुम्हारी कला को जागृत किया है। नहीं तो मेरा तुमसे क्या रिश्ता है ? यह न समझना कि मैं तुमको

प्यार करता हूँ। हम दोनों का मेल ही क्या ? मुझे तुम्हारे धन से घृणा है, तुम्हें मेरी कला से द्वेष है। क्या तुम यह कह सकती हो कि नहीं ? मैंने तुमसे रुपये उधार लिये और वापिस न किये, और न मैं करूँगा, क्या इस अपराध को तुम क्षमा कर सकोगी ? तुम उस समाज की स्त्री हो, जहाँ पति-पत्नी, पिता-पुत्र, मित्र-मित्र का स्नेह केवल एक टके पर, टक से टूट जाता है। मित्र तभी तक मित्र है न, जब तक वह तुम्हारे पैसे को स्पर्श न करे।"

"क्या मैं इतनी नीच हूँ ?" तारा ने कहा।

केशव को ध्यान आया कि वह अपनी ही धुन में न जाने कितनी कटु बात कह गया है। और फिर किसको ? यह तो एक युवती होकर भी एक बालिका सी सरल है। चपत मारने को दिल चाहता है।

"नहीं, तुम नहीं, तुम्हारा समाज नीच है," उसने नम्र स्वर में कहा, "यह समाज एक कार्निवल है, चमक-दमक का खेल है, इसके सुनहरे चक्र में पैर कभी न रखना। तुम एक साधक हो। मनोरंजन नहीं, साधना है तुम्हारे जीवन की सूली।

"यह सच है कि हम मिट जायेंगे, मिट्टी में मिल जायेंगे, किन्तु कौन जाने शायद इसी मिट्टी से युग का कवि उत्पन्न होगा जिसको मैं स्वप्न में देखा करता हूँ। ऐसा पुरुष कई शताब्दियों की तपस्या के बाद उत्पन्न होता है। किन्तु मुझे लगता है कि वह आने वाला है, आने वाला है……। शायद वह एक ही पुरुष होगा या सप्तर्षि के समान सात होकर भी एक होगा। किन्तु उसके अन्दर होंगे बिजली के बटन, जिनको दबाने से मानव के मन में छुपी हुई शक्तियों के अनन्त स्रोत खुल

जायेंगे। उस समय सम्पूर्ण मानवता एक झटके के साथ अधिक-चेतना के स्तर पर उठ जायेगी। ज्ञान-विज्ञान, जन्म-मृत्यु, समय-सीमा, नहीं हमारा सम्पूर्ण भाग्य हमारे चरण चूमने के लिये चला आयेगा। इस नई चेतना का जागरण होना ही है, नहीं तो भौतिक विज्ञान मानव को नष्ट कर देगा। और मानव नष्ट नहीं होगा। क्या वह एक शतरंज की गोट है ?

"क्या तुमने कभी यह सोचा है कि विज्ञान ने साहित्य को सौ साल पीछे पछाड़ दिया है, साहित्य जिसकी इतनी प्राचीन परम्परा है। हिमालय के चरणों में खड़ा होकर जब मैं दूर चोटी पर ज्योति-पताका सी झिलमिलाती हुई बत्ती को देखता हूँ तो सोच में डूब जाता हूँ, यह कौन एकाकी आत्मा वहाँ रहती है। विज्ञान ने जिस प्रकार अपने तार के द्वारा उसकी झोपड़ी को आलोकित किया है, इसी प्रकार उसके मस्तिष्क की ऊँचाइयों पर बत्ती जलाने के लिये क्या साहित्य का अक्षर कभी न पहुँचेगा ? न जाने वह दिन कब आयेगा जब कि लुटेरों की बस्ती में, जुआ-रियों के अड्डे में, रूप के बाजार में, भूखे-नंगे माँझी और मछुओं के बजरों में, बंजारों के अँधेरे खेमों में, बीन की धुन में डूबे हुए गरीब, फटेहाल, मस्त सपेरे की दुनिया में, मानव के उजाड़, बुझे हुए दिल में, साहित्य के तार घूम जायेंगे और लेखक का अक्षर बिजली की बत्ती सा जल उठेगा।

"तुमने एक दिन रेडियम के अक्षर खोज लाने का स्वप्न देखा था। क्या यह भी हँसी-खेल है ? ब्रिज की बाजी है ? फिर यह नैराश्य क्यों ?" केशव के अन्तिम शब्द करुणा की लहर में डूब गये।

शाम की बत्ती जल उठी। साथ ही कुछ गन्दे, चिरकुट

मजदूरों ने शोर-गुल मचाते हुए, गाली-गलौज, हँसी-ठट्ठा करते हुए अन्दर प्रवेश किया। तारा घबराकर एकाएक उठ खड़ी हुई।

"ठहरो", केशव बोला, "हाँ, देखो, दो रुपये मेज पर रख दो, एक रुपया रमजान को इनाम, एक रुपया मेरी सिगरेट के लिये···हाँ, चार आने और, दो कप चाय के लिये। रात को देर तक काम करना होगा न। उधार रहे।"

वह रुपये रख कर चली गई।

साँझ बीत गई, अँधेरा बढ़ने लगा। एक के बाद एक कुछ मजदूर आये, बीड़ी का धुँआ उड़ाते हुए·········ताँगे-इक्के वाले, प्यार की गालियाँ देते हुए···फिर एक पनवाड़ी···इत्र की सुगन्धि लिये हुए एक अत्तार···फिर कुछ जुआरी आये, भद्दे, भोंडे, चाय पी···शुड़ुप···शुड़ुप···शुड़ुप···चले गये······ एक शराबी आया···लड़खड़ाया······मोटी, मैली उँगलियों से इशारा किया···कुर्सी पर ढुलक गया···फिसल गया···ही···ही···ही···हँसा, बाल नोच कर रोने लगा······चला गया······नाली में लुड़क गया। छप्प······छप्प······छप्प······।

धीरे···धीरे···सन्नाटा छा गया। केशव ने लेखनी रख दी। फर्र से सिगरेट जलाई और धुँए का गुच्छा उड़ा कर सोच में डूब गया।

"चाँ······अ···आ···द···की···सैर···सि···ता···रे···ए···खर्र···र···अरा···बाबू सो जाओ न यहीं। मेरा कम्मल ले लो। आह! गजब की ठन्ड है ओ बाबू," रमजान की परछाईं ऊँघते हुए बोली।
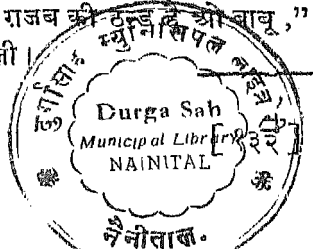
कौड़ियों का नाच

कहानी-संग्रह

लेखिका—सरूप कुमारी बख्शी

आलोचनायें :—

"नई लेखिका के यशस्वी भविष्य के लिये मेरी शुभ कामनायें अर्पित हैं।"

श्री अमृतलाल नागर

"कहानियों के वर्णन में नाच का चुलबुलापन और कौड़ियों की खनक भी मौजूद है।...कौड़ियों के इस नाच में दाँव निश्चय ही सरूप कुमारी बख्शी के हाथ लगा है..."

श्री यशपाल
"युग चेतना"

"प्रेमचन्द और प्रसाद की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले जिन पुराने और नये लेखकों ने कथा-कहानियों के क्षेत्र को समृद्ध किया है, कथाकारों की उसी पंक्ति में हम प्रस्तुत कहानी-संग्रह की लेखिका श्रीमती सरूप कुमारी बख्शी को भी रखते हैं।"

श्री शिवकुमार मिश्र
"आलोचना"

"कहानी तत्व की आधुनिकतम शिल्प और शैली निरूपण की दृष्टि से नहीं, अपनी प्रवाहमयता, सजीवता, कथ्यता, आदि अनेक गुणों से इस संग्रह की सभी कहानियाँ वैशिष्ट्यपूर्ण हैं..."

श्री ज्ञानेन्द्र कुमार भटनागर
"अजन्ता"

"इस संग्रह की सभी कहानियाँ सुन्दर हैं और कुछ में असाधारण उत्कृष्टता है।"

श्री शिवशंकर मिश्र
उ० प्र० पंचायती-राज्य

"ये कहानियाँ मनोरंजन के साथ ही पाठक की जिज्ञासा तथा कल्पना शक्ति के स्तर को उन्नत करती हैं।"

श्री शिवनाथ काटजू
अमृत-बाजार-पत्रिका

"भाषा का जादू उसकी सरलता और सरसता है। सरूप कुमारी बख्शी की कहानियों में भाषा के इस गुण से उनकी शैली सरस, मनोरंजक और प्रभावोत्पादक बन गई है।"

श्री राज वल्लभ ओझा
नवजीवन

"हम सरूप कुमारी बख्शी के रूप में, दुर्बलताओं के उन्मूलन की भावना से प्रेरित, उपेक्षित जन-जीवन के प्रति सहृदयतापूर्ण, प्रत्येक नई जागरूक प्रतिभा का सहर्ष स्वागत करते हैं।"

श्री कृष्ण टण्डन
"आकाशवाणी" लखनऊ

"Altogether a delightful collection of short stories".

Sri Chandra Kishore
National Herald